राष्ट्रीयता के सागर में डुबादो

राम लाल अहेरवार

राष्ट्र, राष्ट्रीय और राष्ट्रीयता ये तीनों एक पेड़ की ऐसी शाखाएं हैं जो एक दूसरे पर आश्रित अवश्य हैं, परन्तु अन्तिम के अभाव में अन्य दोनों अपना अस्तित्व कभी भी खो सकती हैं। इसीलिए राष्ट्र की सुरक्षा, उसकी गरिमा और समृद्धि हेतु राष्ट्रीय एकता का किसी राष्ट्र के जीवन में विशेष महत्व है और एक माता के समान 'जननी जन्म भूमि' के लिए इससे बढ़कर सुखदायी और कोई वस्तु नहीं हो सकती कि उसकी सभी सन्तानें हिलमिल कर हंसी-खुशी से रहें और समृद्धशाली बनें।

यही एक मूल बात है जिसके कारण आदिकाल से आज तक राष्ट्रीय एकता पर सभी युगों में एक स्वर से बल दिया गया है। महाभारत युद्ध के दौरान धर्मराज युधिष्ठिर ने एक कवि के शब्दों में कौरव पाण्डवों को राष्ट्रीय एकता का महत्व बताते हुए कहा था--

जहां तक आपस की है आंच, वहां वे सौ हम पांच।
किन्तु जो करे बाहरी जांच, गिने तो हम एकसौ पांच॥

कहां महाभारत जैसा भयानक युद्ध और कौरव पाण्डवों की ऐतिहासिक फूट! परन्तु इस तनाव की स्थिति में भी राष्ट्र की अक्षुण्णता का ध्यान एक अनहोनी सी बात है, पर सत्य है।

इतना ही नहीं उस वैदिक युग में भी जिसका समय निश्चित करना कठिन है और जबकि राष्ट्र को राष्ट्र की सम्भवतः बाहरी शक्तियों से आक्रमण का भय भी न रहा होगा, राष्ट्रीय एकता पर पर्याप्त बल दिया गया है। यजुर्वेद में वर्णित राष्ट्र वन्दना में जनता की शक्ति को समस्त शक्तियों से श्रेष्ठ माना गया है। जनता की शक्ति की मुक्त कण्ठ से सराहना करने वाली यह ऋचा इस प्रकार है :--

"ओ हरे भरे खेतों में, गोपद चिन्हित कुटीरों में, सुन्दर लोकगीतों में, गूंजते हुए गांवों में वास करने वाली सूर्य की किरणों के समान निष्पाप और उज्ज्वल आनन्द बिखेरने वाली जनता राष्ट्र की सच्ची शक्ति तुम्हीं हो। यह लहलहाती फसलें तुम्हारे ही श्रम का वरदान हैं। दुनिया को जीवन देने वाली तुम हो। जिस प्रकार मधुर जलवाली नदियां एक दूसरे से मिलकर अनन्त विस्तार वाली हो जाती हैं उसी प्रकार तुम्हारे सभी वर्ग आपस में घुलमिल कर अनन्त सौन्दर्य और अनन्त शक्ति को प्राप्त हों। राष्ट्र के भविष्य के लिए लड़ने वाले योद्धाओं को तुम्हारा आशीर्वाद और बल प्राप्त हो और अपने असीम बलशाली राष्ट्रपति से सुशोभित होकर अजेय और अमर बनो..."

राष्ट्रीय एकता का यह महत्व था आज से हजारों वर्ष पूर्व। परन्तु आज के युग में जबकि भारत अगणित जातियों और धर्मावलम्बियों का देश बन चुका है, राष्ट्र की सीमा खतरे में है और जन-जीवन को नया रूप देना है, राष्ट्रीय एकता का अपना विशेष महत्व हो जाता है। इन महान् उत्तरदायित्वों को निभाने में हम तभी सफल हो सकेंगे जब हम सभी यह सोच लें कि हम न हिन्दू हैं, न मुसलमान, न सिक्ख हैं, न ईसाई, न उत्तर भारतीय हैं और न दक्षिण भारतीय। बल्कि हम सब भारतीय हैं और हम सबको "मैं"--"मेरी" की भावना को राष्ट्रीय एकता के सागर में डुबो देना होगा।

इतना ही नहीं; राष्ट्रीय एकता जहां एक ओर आन्तरिक व्यवस्था को मजबूत बनाने के लिए जरूरी है, वहीं दूसरी ओर सीमा पर गए जवानों का हौसला बढ़ाने के लिए और भी अधिक जरूरी है। युद्ध के दौरान अगर हम सेना के जवानों को यह विश्वास दिला सकें कि रेगिस्तान की जलती रेत में, नेफा के घने जंगलों में और लद्दाख की बर्फीली चोटियों पर लेटकर भारत मां की रक्षा करने वाले सूरमाओं तुम हमसे दूर जरूर हो लेकिन हमारे कदम तुम्हारे कदमों के साथ हैं और हमारे दिलों की धड़कन तुम्हारे दिलों की धड़कन के साथ जुड़ी हुई है, सम्पूर्ण राष्ट्र तुम्हारे पीछे है, तो एक बार बिना साज समान के भी वे देश के लिए जी-जान से लड़ेंगे।

अन्त में राष्ट्रीय एकता के परिपेक्ष्य में हम सबको एक बात स्वीकार करनी पड़ेगी कि भारत किसी एक जाति विशेष का देश नहीं है, बल्कि यह एक ऐसा हरा-भरा सुन्दर उपवन है जिसमें अनेक रूप रंग के पक्षी बसेरा लेते हैं। अपनी-अपनी विभिन्न बोलियां बोलते हुए भी ऐसे कलरव का सृजन करते हैं जो सामूहिक जीवन का संगीत बन जाता है। सम्भवतः इसी कल्पना से प्रभावित होकर उर्दू के प्रसिद्ध शायर इकबाल की लेखनी से यह पंक्तियाँ प्रवाहित हो उठी होंगी : सारे जहां से अच्छा हिन्दोस्तां हमारा, हम बुलबुले हैं इसके यह गुलिस्तां हमारा।

'कुरुक्षेत्र' के लिए मौलिक लेख, कहानी, एकांकी, कविता, संस्मरण, चित्र, फोटो आदि भेजिए। भाषा सरल हो और रचना का आकार 'कुरुक्षेत्र' के दो ढाई पृष्ठ से अधिक न हो।

●

अस्वीकृत रचनाओं की वापसी के लिए टिकट लगा व पता लिखा लिफाफा साथ आना आवश्यक है।

●

'कुरुक्षेत्र' की एजेन्सी लेने, ग्राहक बनने या पता बदलने या अंक न मिलने की शिकायत बिजनेस मैनेजर, प्रकाशन विभाग, पटियाला हाउस, नई दिल्ली-1 से कीजिए।

●

सम्पादकीय पत्र-व्यवहार सम्पादक 'कुरुक्षेत्र' (हिन्दी), कृषि मन्त्रालय, 467 कृषि भवन, नई दिल्ली के पते पर करें।

✤

दूरभाष : 382406

एक प्रति 50 पैसे ● वार्षिक चन्दा 5.00 रुपए

सम्पादक :
पी० श्रीनिवासन

स० सम्पादक :
महेन्द्रपाल सिंह

उपसम्पादक :
त्रिलोकीनाथ

कुरुक्षेत्र

वर्ष 19 **अश्विन 1896** **अंक 12**

इस अंक में

पृष्ठ

मैं-मेरी की भावना को राष्ट्रीयता के सागर में डुबा दो
रामलाल अहेरवार आवरण पृष्ठ II

आदिवासी जीवन : समस्याएं एवं समाधान 6
डा० श्याम सिंह शशि

जनजाति-विकास के बढ़ते चरण 9
एम० ए० कुरेशी

जनजातीय और पर्वतीय क्षेत्र विकास की ओर अग्रसर 13
आर० के० मिश्र

राजस्थान के गिरासिया भील 16
अक्षय कुमार जैन

जनजातीय क्षेत्रों की परियोजनाओं का एक अध्ययन 19
ए० एन० आचार्य

समस्याओं के जाल में फंसी ये जनजातियां 22
परिपूर्णानन्द पैन्यूली

इण्डो-जर्मन परियोजना 25
सी० डी० चोकलिंगम

जन-जाति विकास की परियोजनाएं 27
शशि प्रभा चावला

दान्तेवाड़ा का प्रयोग 29
एस० आर० गुप्ता

जनजातियों का जीवन सुधार की ओर 31
डा० रामगोपाल चतुर्वेदी

उत्तर प्रदेश की अनुसूचित जनजातियां 33
छेदी लाल साथी

जनजातियों में सुपोषण का अभियान 37
रमेशदत्त शर्मा

पर्वतीय क्षेत्रों में खादी ग्रामोद्योग 39
शिशुपाल सिंह त्यागी

अगुच्छित आदिवासी और सामुदायिक विकास 41
डा० शम्भू लाल दोषी

स्वर्गों का ऐश्वर्य उतारो इस भूतल पर

अज्येष्ठा सो अकनिष्ठास एते मं भ्रातरो वा वृधु : सौभगाय ।
युवा पिता स्वपा रुद्र एषां सुधा पृश्नि : सुदिना मरुद्भ्य: । 516015 ऋग्वेद
जग में छोटा बड़ा न कोई सब हैं भ्राता ।
ईश्वर सब का पिता धरती है माता ।।
एक पिता के पुत्रों से सब मिलो परस्पर ।
स्वर्गों का ऐश्वर्य उतारो इस भूतल पर ।।

ऋग्वेद के उक्त प्रेरक मन्त्र का उद्‌बोधक स्वर कल भी उतना ही समीचीन था, जितना आज और वैसा ही यह कल भी रहेगा ।

कोई व्यक्ति तब तक स्वस्थ नहीं कहा जा सकता जबतक कि उसके शरीर के सभी अवयव स्वस्थ न हों और सुचारू रूप से काम न करते हों । प्रत्येक अवयव के स्वस्थ होने का अर्थ है शरीर का स्वास्थ्य और व्यक्ति की उन्नति । ठीक यही बात लागू होती है हमारे इस विशाल भारत देशपर जहां एक ओर तो धन-धान्य विपुला वीर भूमि पंजाब में अनवरत सोना बरसता रहता है, हरित परिधान ओढ़े अनगिनत खेत एक छोर से दूसरे छोर तक फैले हैं, हज़ारों की संख्या में औद्योगिक संस्थान धुआं उगलते राष्ट्रीय सम्पदा को बढ़ा रहे हैं, वहाँ दूसरी ओर सुदूर वनों, शैल-श्रृंखलाओं तथा अभेद्य प्रान्तारों में बसी जन-जातियां हैं । सविता-सभ्यता की रश्मियाँ अभी तक भी इन जन-जातियों के जीवन को ज्योतित नहीं कर पाई । अब भी वे लोग अपनी परम्परागत संकीर्णता में सिकुड़े और सहमे एक ललचाई दृष्टि से देख रहे हैं शेष भारत को । युगों से चली आ रही अपनी परम्पराओं एवं अलग अलग विचार धारा के कारण वे सशंक हैं और आतुर हैं राष्ट्र की मन्दाकिनी की मुख्य धारा में आ मिलने को । इन सब बातों को विचार कर ही राष्ट्र ने लगभग तीन करोड़ जन-जातियों की जागृति का बीड़ा उठाया है । इस सम्बन्ध में प्रधान मन्त्री के ये विचार उल्लेखनीय हैं :

हमारा यह कर्त्तव्य है कि पिछड़ा जन-समुदाय अब उपेक्षित न रह पाए । हमारी प्रगति की धारा में उन्हें हमारे सहभागी बनना है । उनकी उन्नति अनिवार्य है ताकि हमारा राष्ट्र मजबूत बन सके क्योंकि वैषम्य सभी कष्टों का मूल है ।

यही कारण है, भारत के संविधान में इस बात की विशेष व्यवस्था की गई है कि देश के कमजोर वर्गों के शैक्षणिक और आर्थिक हितों को ध्यान में रखकर विशेष कदम उठाए जाएं । इस बात का ध्यान तो अब सरकारी तन्त्र को रखना है कि सरकारी पैसे का सदुपयोग हो और जन-जातियों के लोगों की उनकी योजनाओं में ऐसी अभिरुचि जगाई जाय कि वे सोचें कि हम अपना ही काम कर रहे हैं, हमारे काम में बाहर वाले क्यों लगें, हम ही क्यों न इसे निपटा डालें । जब इनमें उस योजना के प्रति ऐसा अपनत्व जगेगा तो ये लोग योजनाओं द्वारा भरपूर लाभ उठा सकेंगे ।

इन जन-जातियों को जीवन की सामान्य आवश्यकताओं के लिए निरन्तर जूझना पड़ता है । उनके शिकार व खेती के अपने ही औजार हैं, उनके रस्मोरिवाज अपने हैं, उनकी अपनी बोली में उनका दुःख दर्द रिस रिस कर झरता है, पर ये लोग बड़ी ठोस काठी व बुलन्द होसले के स्वामी हैं । काश ! इसका भरपूर लाभ उठाया जा सके । इनमें कुछ जातियों के लोग चरवाहा हैं, कुछ शिकारी हैं कुछ झूम खेती करते हैं, और कुछ ऊन का धंधा करते हैं, परन्तु ये लोग भले ही कुछ करते हों, अब भी इनमें से अधिकांश लोग आधुनिक विज्ञान की सुख सुविधाओं से वंचित हैं, उनके रहन सहन का स्तर नीचा है, शिक्षा का अभाव है । आमतौर पर न तो वहां यातायात के साधन हैं, न कोई उद्योग-धंधे हैं, न चिकित्सा की सुविधाएं हैं और मनोरंजन के साधनों की तो बात ही क्या ?

इन सब बातों को ध्यान में रखते हुए सरकार ने पांचवीं योजना में काफी व्यवस्था की है । जन जातियों के लिए बनाई गई योजनाओं में सरकार ने इस बात का विशेष ध्यान रखा है कि इन

प्रधान मन्त्री सचिवालय

नई दिल्ली-11

14 अगस्त, 1974

प्रधान मन्त्री को यह जानकर प्रसन्नता है कि कुरुक्षेत्र के इस वर्ष के वार्षिक अंक की विषयवस्तु "जनजातीय एवं पर्वतीय क्षेत्रों के विकास" से सम्बन्धित है। वे कुरुक्षेत्र के इस वार्षिक अंक की सफलता की कामना करती हैं और आशा करती हैं कि इसमें पर्वतीय और जनजातीय क्षेत्रों की समस्या ठीक से प्रस्तुत की जाएगी।

(एच० वाई० शारदाप्रसाद)

लोगों की संस्कृति का रक्षा करते हुए इनके लिए अर्थकरी धंधे खोजे जाएं। इनकी बस्तियों को सड़कों से मिलाया जाए। इनमें शिक्षा का प्रचार किया जाए। इन्हें खेती के नये तौर तरीके समझाए जाएं।

पांचवीं योजना में इनके लिए करोड़ों रुपए का प्रावधान है। देश भर के लिए जनजाति विकास एजेन्सियां कायम की गई हैं पर इतने बड़े जन समुदाय के लिए इतनी एजेन्सियां तो 'ऊंट के मुंह में जीरा' हैं। परन्तु एजेन्सियों में काम करने वाले बहुत से लोग वहां जाकर उदासीन हो जाते हैं और परिणामतः उतना योगदान नहीं कर पाते जितना करना चाहिए। विशेष रूप से उनके आवास की समुचित व्यवस्था को जानी चाहिए।

जन जातियों के साथ आत्मीयता जता कर उन्हें उनमें भरोसा पैदा कर देना चाहिए कि सरकार की कोई ऐसी भावना नहीं है कि उनके रस्मो-रिवाज व संस्कृति का हनन हो बल्कि उनके ही सांस्कृतिक कार्यक्रमों के माध्यम से सुधार किए जाएं।

गैर जन-जातियों के कई लोग उनका आर्थिक शोषण करते हैं। इस शोषण को सहकारी और सरकारी माध्यम से रोका जाए।

जोड़ने वाली सड़कों का निर्माण यथाशीघ्र किया जाए। शनैः शनैः उनको शिक्षा द्वारा धंधों की ओर लाया जाए। शराब तथा बाहरी लोगों द्वारा यौन स्वच्छन्दता के दुरुपयोग आदि के अनैतिक कार्यों को रोकने की उनमें जागरूकता पैदा की जाए। उनकी आलोचना करने के बजाय उनके साथ मिल बैठ कर उन्हें ही अपने विश्लेषण के लिए प्रेरित किया जाए। राष्ट्रीय समृद्धि के सभी पक्षों जैसे हरित क्रान्ति, पशुपालन, औद्योगिक विकास का लाभ उन लोगों तक पहुंचाया जाए।

अगर कहीं इस अवहेलित मानवता के लोहे को राष्ट्र की निष्ठा का पारस छू गया तो अनगिनत मानवों का और अधिक श्रम व प्रतिभा सुलभ हो कर समृद्धि का वृक्ष और अधिक फलेगा-फूलेगा।

महेन्द्रपाल सिंह

गृह मन्त्री
भारत
नई दिल्ली 20 सितम्बर, 1974

सन्देश

जनजाति खण्डों का जो विकास कार्यक्रम 1956 में आरम्भ किया गया था उसके स्थान पर पांचवीं योजना में समेकित जनजाति विकास परियोजनाएं शुरू की गई हैं। इन परियोजनाओं के माध्यम से जनजाति क्षेत्रों के विकास को तीव्र किया जाएगा और उन्हें अन्य विकसित क्षेत्रों के बराबर लाने का हर सम्भव प्रयास किया जाएगा।

इस कार्यक्रम को सफल बनाने के लिए आवश्यक है कि जिन क्षेत्रों में ये परियोजनाएं चलाई जा रही हैं उनकी जरूरतों और परिस्थितियों को समझकर वहां की समस्याओं का समाधान खोजा जाए तथा साथ ही सभी सम्बन्धित अधिकारी एक-दूसरे से पूरा-पूरा सहयोग करें।

मैं इस सुझाव का स्वागत करता हूं कि "कुरुक्षेत्र" के वार्षिक अंक की विषयवस्तु "जनजातीय और पर्वतीय क्षेत्र विकास" रखी गई है।

(उमाशंकर दीक्षित)

कृषि मन्त्री
भारत सरकार
नई दिल्ली
दिनांक 16 अगस्त, 1974

सन्देश

मुझे यह जानकर बड़ा हर्ष हुआ है कि 'कुरुक्षेत्र' अपने "वार्षिक अंक 1974" में देश के जनजाति और पहाड़ी क्षेत्रों की विभिन्न समस्याओं से सम्बन्धित सामग्री प्रकाशित करेगा। यद्यपि कई कारणों से ये क्षेत्र अभी भी पिछड़े हुए हैं, तथापि इन क्षेत्रों की मूल समस्याएं फिर भी अब समझी जाने लगी हैं। इन क्षेत्रों के अभी तक पिछड़े रहने के कारण है : इनकी दुर्गमता, हालात अनुकूल न होना, मूल सुविधाओं, उद्यम और ऐसी ही अनेक बातों का अभाव। परन्तु सामान्यतः इन क्षेत्रों के लोगों की जीविका का मुख्य साधन कृषि ही है। इन क्षेत्रों को देश के अन्य उन्नत कृषि क्षेत्रों के बराबर लाना है। समय की मांग तो यह है कि हम कृषि विकास की नई नीति के परिणामों को इन क्षेत्रों तक पहुंचाएं, ताकि वे यथाशीघ्र अपना आर्थिक सुधार कर सकें। इसलिए आवश्यकता इस बात की है कि हम कार्यक्रमों की रूपरेखा ऐसी बनाएं जिससे इन क्षेत्रों में रहने वालों के मन में विकास कार्यक्रमों को पूरी तरह सफल बनाने की भावना जाग्रत हो। मैं इन पिछड़े क्षेत्रों के विकास के प्रयासों की पूर्ण सफलता की कामना करता हूं।

(सी० सुब्रह्मण्यम)

राज्य मंत्री, कृषि मंत्रालय,
भारत
RAJYA MANTRI, KRISHI MANTRALAYA,
INDIA

नई दिल्ली

अगस्त 19, 1974

सन्देश

मुझे यह जानकर खुशी हुई है कि "कुरुक्षेत्र" अपना वार्षिक अंक - 1974 'आदिवासी और पहाड़ी क्षेत्र विकास' के विषय पर निकाल रहा है । जब से हम स्वतंत्र हुए हैं तबसे इन क्षेत्रों की समस्याएं हमारा ध्यान आकर्षित करती रही हैं । इन इलाकों में रहने वाले लोगों के आर्थिक स्तर को ऊंचा उठाने के उद्देश्य से केन्द्र और राज्य दोनों की क्षेत्रीय सहायता से अनेक विकास सम्बंधी कार्यक्रम तैयार तथा आरम्भ किये गये हैं । ये आरम्भ किए गए कार्यक्रम ज्यों-ज्यों आगे बढ़ते जायेंगे, त्यों-त्यों इनका प्रभाव लक्षित होता जाएगा । परम्परागत रूप में, ये इलाके पिछड़े हुए हैं । इन इलाकों में अधिकांश लोग अत्यन्त गरीबी में जीवन बिताते हैं । भारत के संविधान ने हमें यह जिम्मेदारी सौंपी है कि हम आदिवासी लोगों के समाज-आर्थिक हितों को बढ़ावा दें और उन्हें हर प्रकार के शोषण से बचायें । इसलिए, यह हमारा पवित्र कर्तव्य है कि हम इस कार्य के लिए आगे आयें और इन इलाकों के आर्थिक विकास के कार्य को पूर्ण लगन से चलायें । मैं इस दिशा में "कुरुक्षेत्र" के प्रयासों की पूर्ण सफलता की कामना करता हूं ।

अन्नासाहेब शिंदे

(अन्नासाहिब पी० शिन्दे)

आदिवासी जीवन : समस्याएं एवं समाधान

डा० श्यामसिंह शशि

भारत विविधताओं का देश है। यहां भिन्न-भिन्न संस्कृतियां, अलग-अलग भाषा व पृथक्-पृथक् रीति-रिवाज एक साथ विकसित होते रहे हैं। यहां की अधिकांश जनता गांवों, जंगलों या पहाड़ों में निवास करती है। इन इलाकों में कृषि ही जीवनयापन का मुख्य आधार रहा है। लेकिन मैदान तथा पहाड़ की कृषि पद्धतियां पर्याप्त रूप से भिन्न हैं। आदिवासी लोगों में तो पद्धतियां और भी विचित्र बन गई हैं। एक ओर असम की गोड और मध्य प्रदेश की तथा राजस्थान की भील जनजातियां झूम की खेती में खुश हैं तो दूसरी ओर बिलासपुर के बैगा हल से खेती करना धरती मां के साथ पाप समझते हैं। लेकिन ऐसी क्या विशेषता है उनकी इन पद्धतियों में जिनके द्वारा वे भरपेट अन्न भी पैदा नहीं कर सकते किन्तु फिर भी उससे चिपटे हुए हैं?

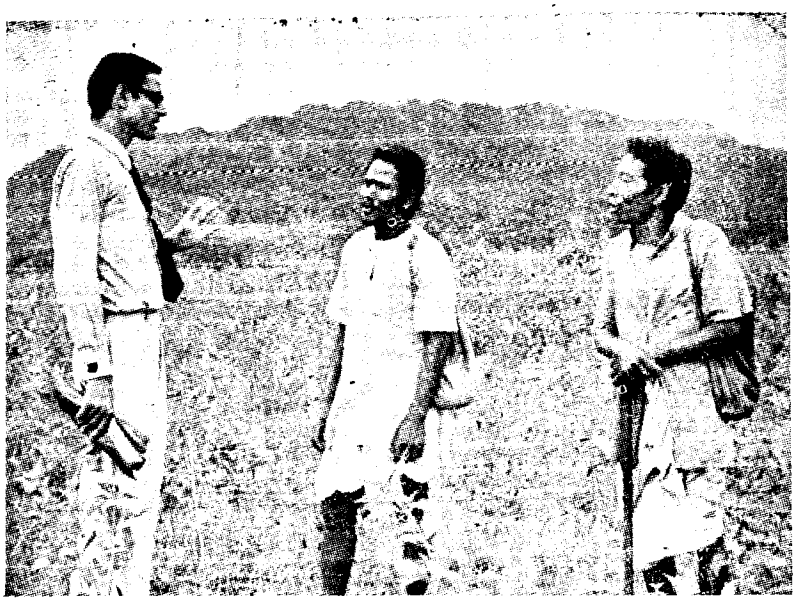

भारत में आदिवासियों की संख्या तीन करोड़ से अधिक है। उनकी आय के स्रोत हजारों वर्षों से जंगल, पहाड़, नदियां तथा अन्य प्राकृतिक स्थल रहे हैं। उसी पर्यावरण के अनुसार उनके जीवन के प्रतिमान, रहन सहन के तौर-तरीके तथा सामाजिक ढांचे का निर्माण होता है। उनका सोचने का ढंग तथा बाहरी दुनिया को समझने का दायरा भी उनके परिवेश के परिप्रेक्ष्य में सन्निहित रहता है। वास्तव में जनजातीय जीवन पद्धति से अपरिचित लोग उन्हें एक अजीबो-गरीब संस्कृति का खाका भर समझते रहे हैं या उनके संगीत और नृत्य के परिचय तक सीमित रहे हैं। उनकी वास्तविक समस्याओं की ओर किसी का ध्यान नहीं जाने पाता। कौन जानता है इन थिरकते पांवों में कितने कांटे चुभे हुए हैं जिन्हें निकालने की तजवीज उनके पास शायद नहीं? ये कांटे और अधिक चुभते जाते हैं। उनका दर्द "औखां पीहाड़ा राजीणा' अर्थात् पहाड़ों का जीवन कितना कठिन है—इस प्रकार के अनेक भावों से भरे गीतों में भरा हुआ है। आइए उनकी कतिपय आर्थिक समस्यों पर यहां कुछ विचार करें।

जनजातीय जीवन को प्रकृति से अनवरत रूप से संघर्ष करना पड़ा है। उदरपूर्ति के लिए वे कठोर परिश्रम करते हैं। स्वयं निर्मित औजारों को ही उन्होंने अपनी कृषि प्रणाली का प्रमुख अंग मान लिया है। सुप्रसिद्ध समाजशास्त्री डा० मजूमदार के अनुसार जनजातीय अर्थव्यवस्था अनेक कारकों पर आधारित है। एक जनजाति को अपने आपको उस स्थान के अनुकूल बना लेना चाहिए जिसमें वे रहते हैं। उनके समूह के सदस्यों में परस्पर निर्भरता के सम्बन्धों का विकास होना आवश्यक है तथा समूह का उचित संगठन होना भी जरूरी है।

जनजातियों को अनेक प्रकार से वर्गीकृत किया जा सकता है। जैसे क्षेत्रीय, प्रजाति, भाषा एवम् संस्कृति के आधार पर अर्थ व्यवस्था की दृष्टि से हम इन्हें निम्न भागों में वर्गीकृत कर सकते हैं:—

1. खाद्य संग्रहीता
2. चरागाही जनजातियां
3. स्थानान्तरित कृषक समाज
4. स्थायी कृषक समाज

खाद्य संग्रहीता : इस व्यवस्था में अधिक परिश्रम की आवश्यकता नहीं, किन्तु जंगली पदार्थ, जड़ें, फल तथा पत्ते इकट्ठा करना कोई कम खतरे का काम नहीं। ये लोग शिकार करते हैं या मछली पकड़ कर उदरपूर्ति करते हैं। छोटा नागपुर के बिरहोर, उड़ीसा के जुवांग, मध्यप्रदेश के कोखा, ट्रावनकोर कोचीन के कादर तथा महाराष्ट्र के कतकारी आदिवासी लोग इस प्रकार के जीवनयापन की पद्धति अपनाए हुए हैं। कुछ लोग खानाबदोश हैं। जुवांग जनजाति सांप तक खा जाती है। कोमा लोग कच्चा मांस खाने के शौकीन हैं। 'हो' जनजाति के बच्चों को शुरू से ही यह शिक्षा दी जाती है कि वे शिकार करके ही अपना हिस्सा प्राप्त करने की कोशिश करें। लेकिन इस शिकार के पीछे कितनी जानें जाती हैं इसका अनुमान लगाना कठिन है।

चरवाहे आदिवासी—हिमालय तथा विन्ध्याचल की अनेक जनजातियां पशु-पालन द्वारा अपनी उदरपूर्ति करती हैं। हिमालय की घाटियां चरवाहे की वंशियों

से गुंजरित हो उठती है जो [illegible] है उनके कठिन जीवन में कोई [illegible] रस घुलता आ रहा है जो पर्वत की दूभर चढ़ाइयों को पार करने में सहायक बनता है। यहां के गद्दी, भोटिया, किन्नर आदि भेड़ बकरी पालते हैं तथा उनमें से बहुत से लोग यायावरी जीवन व्यतीत करते हैं। उन्हें महीनों नहाने का अवसर नहीं मिलता किन्तु केवल प्रकृति का सान्निध्य ही उन्हें स्वास्थ्य प्रदान करता है। पर समस्याओं का कोई अन्त नहीं। भोटिया लोग ऊन तथा वस्त्रों का व्यापार भी करते हैं। चीनी आक्रमण से पूर्व इनकी स्थिति अच्छी थी क्योंकि चीन से वे ऊन आदि का व्यापार करते थे। यह जानकर आश्चर्य होता है कि नीलगिरि के टोडा लोग एकदम शाकाहारी हैं तथा गाय-भैंस पाल कर अपनी गुजर करते हैं। बहुपति प्रथा के कारण इन लोगों की जनसंख्या घटती जा रही है। यहां यह बात स्पष्ट कर देना उचित होगा कि ये जनजातियां मुख्य रूप से पशुओं के सहारे ही गुजरबसर करती हैं। अतः चरागाहों के अभाव में उन्हें अपना घरबार छोड़कर अन्यत्र जाना पड़ता है। उनका सारा परिवार भी साथ रहता है। ऐसी स्थिति में न तो उनके बच्चे नियमित रूप से शिक्षा प्राप्त कर सकते हैं और न ही उनके परिवार सुख शान्ति का जीवन व्यतीत कर सकते हैं। कश्मीर के पांगी प्रदेश में पंगवाल पशुपालन करते हैं लेकिन आधे से अधिक साल वहां बर्फ जमी रहती है अतः ऐसी दशा में कहां जाएं ये बेचारे? केवल दो ही विकल्प रह जाते हैं। या तो अपना घरबार छोड़कर बहुत दूर कहीं और प्रदेश में निकल जाएं अथवा रात दिन लगकर इतना चारा एकत्र कर लें कि वह साल तक पशुओं के लिए पर्याप्त रहे। एक अजीब विडम्बना है यहां के आदिवासी जीवन की।

गांधी जी कहा करते थे भारत गांवों का देश है और गांव खेती पर आधारित हैं। अतः यदि गांव प्रगति करते हैं तो सारा देश उन्नति की ओर अग्रसर होता है। वस्तुतः यही तथ्य आदिवासी समाज पर भी लागू होता है। जनजातियां चाहे पशुपालक हों या खाद्य संग्रहीता, किन्तु एक स्थिति ऐसी आती है जब उन्हें कृषि का सहारा लेना ही पड़ता है। अनेक पशुपालक समाज कृषि कार्य भी करते हैं। प्रमुख कृषक जनजातियां हैं—सन्थाल, उरांव, मुण्डा, भील, गोंड, मझवार, खस, हो, कोखा, मारो, खासी, आदि। पहले कभी बिना हल-बैल के ही कृषि हो जाती थी किन्तु अब अपवाद छोड़कर हल और बैल इन लोगों तक पहुंच गए हैं।

जनजातीय कृषि व्यवस्था मुख्य रूप से दो भागों में विभक्त की जा सकती है—

1. **स्थानान्तरित कृषि** :—इसे झूम खेती कहते हैं। मानव कभी कन्द-मूल खाकर तथा जंगली जानवरों के शिकार पर जीवनयापन करता था। आज से लगभग दस हजार वर्ष पूर्व नियोलिथिक काल में कृषि व्यवस्था का जन्म हुआ। विश्व के उष्ण तथा उपोष्ण प्रदेशों की जनजातियों में प्रायः सर्वत्र स्थानान्तरण कृषि की जाती है। भारत में असम की कुछ जातियां भील कोरकू आदि समाजों में यह पद्धति आंशिक रूप में आज भी विद्यमान है। होता यह है कि लोग पहले कुल्हाड़ी से जंगलों को गिरा देते हैं। जब पेड़-पौधे सूख जाते हैं तो उनमें आग लगा दी जाती है। यह कार्य गर्मियों में सम्पन्न होता है। वर्षा शुरू होते ही उसमें बीज बो दिया जाता है। फसल काट कर आदिवासी वह स्थान छोड़ देते हैं और फिर किसी दूसरे जंगल पर कयामत आती है। इस तरह जंगल तो साफ होते रहते हैं पर कृषि योग्य स्थानों का अभाव होने लगता है। इस पद्धति को बेरियर एल्विन ने 'ऐक्स कल्टीवेशन' कुल्हाड़ी द्वारा कृषि की संज्ञा दी है। बैगा लोग इसे 'बेवार', माडिया 'पेंदा', गारो 'झूम', गोंड 'मालुवा', उड़ीसावासी 'गूदिया', 'पोदू' या 'डोगरचारू' कृषि पद्धति के नाम से सम्बोधित करते हैं। मध्यप्रदेश के बस्तर जिले में इस पद्धति का बड़ा रिवाज था। 1867 तक सरकार जंगलों को जलाकर खेती करने की ओर ध्यान नहीं देती थी। किन्तु उसी वर्ष आदेश जारी हुए

कि स्थानान्तरण कृषि सरकारी अनुमति के बिना नहीं की जा सकती। 1948 में रियासतों के विलय के बाद जंगलात कानूनों में और भी परिवर्तन हुए। आज इस पद्धति को सुदूरस्थ जनजातियों को छोड़कर अन्य लोगों ने छोड़ दिया है। आज जो जनजातियां इस पद्धति को अपनाए हैं वे सामूहिक रूप से ही कृषि कार्य करते हैं। वहां जमीन का वितरण कबीले का सरदार करता है, सरकार नहीं।

भारतीय कृषि अनुसन्धान परिषद् के एक सर्वेक्षण से पता चला है कि 1956 में मध्य प्रदेश में लगभग 40 हजार एकड़ भूमि में स्थानान्तरण कृषि की जाती थी। करीब 6 हजार परिवार इस कार्य में व्यस्त थे। इस प्रकार पूरे राज्य में 15 जनजातियों के 30 हजार व्यक्ति इस प्रणाली पर जीवनयापन करते थे।

झूम की खेती के दोषों का आभास जब असम के अंगामी नागाओं को हुआ तो उन्होंने स्थायी कृषि शुरू कर दी। फलस्वरूप झूमकृषक सोमानागाओं की अपेक्षा उनकी आर्थिक स्थिति बहुत अच्छी हो गई। ये लोग खाद और पानी देकर अपने खेतों को लहलहाते तथा अपेक्षाकृत अच्छा जीवन व्यतीत करते हैं। इसी प्रकार अन्य समाजों में भी

स्थायी खेती का प्रचलन शुरू हुआ।

सूत कातना, वस्त्र बुनना, टोकरी बनाना, चटाई, बर्तन तथा अन्य घरेलू आवश्यकताओं की वस्तुओं का निर्माण कार्य भी आदिवासी समाजों ने अपनाया। माड़िया गोंड वन्य पदार्थों से स्प्रिट तैयार करते हैं तो साजोरा, कोड और गोड धातुशोधन, कताई-बुनाई, पात्र निर्माण आदि कार्य करते हैं। थारु जनजाति वाद्ययन्त्र बनाती है। अगरिया लोहे का काम करते हैं। कूर्माचल प्रदेश की भोटिया स्त्रियां तथा इम्फाल की नागा महिलाएं डिजाइनदार वस्त्र तथा गलीचे आदि बनाती हैं। उल्लेखनीय है कि बिहार में टाटा लोहा एवं इस्पात उद्योग में अधिकांश मजदूर सन्थाल हैं जिनकी संख्या 18 हजार से ऊपर है।

सुप्रसिद्ध नृ-वैज्ञानिक डा० धुरये ने आदिवासी समाज की समस्याओं के बारे में टिप्पणी करते हुए कहा है—जन-जातीय समस्याएं कुछ ऐसी हैं जो उन्हीं तक सीमित हैं जैसे नई आदतें, भाषा, अथवा स्थान-परिवर्तित कृषि। दूसरी समस्याएं ऐसी हैं जो ब्रिटिश शासन की लगान पद्धति और विधि-विधान से सम्बन्धित हैं। हमारे विचार से 'जन-जातियों की समस्याएं एक प्रकार की नही बल्कि अनेक प्रकार की हैं। उप-र्युक्त तथ्यों से यह स्पष्ट हो गया है कि जनजातियों को दुर्गम स्थानों में रहना पड़ता है। जंगलों, पहाड़ों तथा सुदूर-वर्ती क्षेत्रों में रहने के कारण उनका बाहरी उन्नत समाजों के साथ सम्पर्क न के बराबर रहता है। अतः जब वे अन्य समाजो के सम्पर्क में आते हैं तो उनका शोषण भी खूब होता है। प्रशासन में भी कुछ खामियां रहती हैं। कुछ संस्थाओं ने धर्म परिवर्तन द्वारा उनके सांस्कृतिक मूल्यों पर आघात पहुंचाया है।

आर्थिक समस्या प्रायः सभी सम-स्याओं का मूलाधार होती है। किसी समाज का यदि आर्थिक स्तर ऊंचा उठता है तो उसके अन्य स्तर भी स्वयं ऊपर उठ जाते हैं। जनजातियों के सम्पर्क में जो भी तथाकथित सभ्य समाज आए उन्होंने उनका शोषण ही किया। व्यापारी लोगों ने ऊंचे दामों पर अपना माल बेचा तो साहूकारों ने रुपया उधार देकर हमेशा के लिए उन्हें अपने चंगुल में फंसा लिया। जौनसार बाबर का कोल्टा पीढ़ी-दर-पीढ़ी यह कर्ज उतारता मर जाता है लेकिन अजन्मे बच्चे फिर भी उसी कर्ज के भार से दबे रहते हैं। यही हालत अन्य जनजातियों की भी है।

वन विभाग के कर्मचारियों के प्रति आदिवासियों की शिकायतें भी कुछ कम नहीं है। मुझे भारत की अनेक वन्य जातियों का अध्ययन करने का मौका मिला है। मैं जहां भी गया वहां लोगों ने 'जंगलों' के उपयोग की बाधा का जिक्र किया। उनके पशुओं को जंगलों में जाने से रोका गया। उनसे बेगार ली गई। ऐसा न करने पर उन्हें दण्डित भी किया गया।

स्थान परिवर्तन कृषि की समस्या का अन्त तो होता आ रहा है लेकिन इस व्यवस्था के पीछे आदिवासियों के धार्मिक विश्वास भी जुड़े हुए हैं। वे झूम की खेती ईश्वरीय इच्छा से जोड़ते हैं। अतः कोई भी परिवर्तन कानून द्वारा सम्भव नहीं। अच्छा होगा पहले उनका परि-वर्तन किया जाए।

औद्योगिक श्रमिकों की समस्या और भी जटिल है। आदिवासीजन नगरों के सम्पर्क में प्रथम बार आते हैं तो वहां की चकाचौंध से या तो घबरा जाते हैं या पथभ्रष्ट हो जाते है। यही कारण है कि शराब इनका प्रिय पेय पदार्थ बन गया और कई प्रकार की नैतिक बुराइयां घर कर गई। पिछले दिनों बस्तर के मुड़िया आदिवासियों के बारे में इस प्रकार के कई समाचार प्रकाशित हुए थे। मुड़िया लोगों में घोटुल प्रथा पाई जाती है। वहां यौन स्वेच्छन्दता है। अविवाहित लड़के लड़कियों को एक ही कमरे में सोना पड़ता है। यद्यपि यह यौन शिक्षा का ही एक अंग है किन्तु बाहर के लोग उस पद्धति का गलत अर्थ लगाते हैं। आदिवासी इलाकों में ऐसी कई घटनाएं घटीं जिनमें बाहर के लोग दोषी पाए गए।

अस्पतालों और शिक्षालयों के अभाव के अतिरिक्त अन्य अनेक समस्याएं हैं जो आज भी आदिवासियों को घेरे हुए हैं। पं० जवाहरलाल नेहरू कहा करते थे कि इन लोगों को अपनी प्रतिभा के अनुसार विकसित होना चाहिए और हमको जनजाति के लोगों पर किसी चीज को थोपना नहीं चाहिए। उनकी कला और संस्कृति को बढ़ावा देना चाहिए।

प्रो० दुबे तथा अन्य समाजशास्त्रियों के अध्ययन एवं लेखक के निजी अनुभव के आधार पर हम इन समस्याओं का समाधान यों खोज सकते हैं—

1. वैज्ञानिक अध्ययन द्वारा आदि-वासियों के सामाजिक संगठन और मूल्यों के ज्ञान की उपलब्धि की जाए। 2. विभिन्न प्राविधिक, आर्थिक, सांस्कृतिक विकास के धरातलों पर उनकी विविध समस्याओं का सूक्ष्म अध्ययन होना जरूरी है। 3. आर्थिक स्तर ऊंचा करने के लिए हरित क्रान्ति, औद्योगिक विकास, पशुपालन, तथा अन्य स्थानीय उद्योग धन्धों में भरसक सहयोग देना परमा-वश्यक होगा। 4. आदिवासी क्षेत्रों में काम करने वाले कर्मचारियों को उनकी संस्कृति से परिचित कराने के लिए विशेष प्रशिक्षण दिया जाए। 5. आदि-वासी के सहज परिवर्तनशील पक्षों का विश्लेषण। 6. आदिवासियों के रीति-रिवाजों की आलोचना करने के बजाए उनके हृदय को जीतने के लिए विभिन्न कदम उठाना। मानवीय दृष्टिकोण को ध्यान में रखकर बहूद्देश्यीय योजनाएं चलाना।

हर्ष का विषय है कि आज आदि-वासी कल्याण में जहां भारतीय आदिम जाति सेवक संघ जैसी स्वैच्छिक संस्थाएं लगी हुई हैं वहां भारत सरकार ने भी उनके कल्याण के लिए अनेक कदम उठाए हैं। उनके विकास के लिए अनेक बहूद्देश्यीय खण्डों का निर्माण किया गया है। अनेक गांवों में कुटीर उद्योगों के लिए केन्द्र खोले गए हैं। उनके बच्चों के लिए शैक्षणिक सुविधाएं—छात्रवृत्ति आदि दी जा रही हैं।

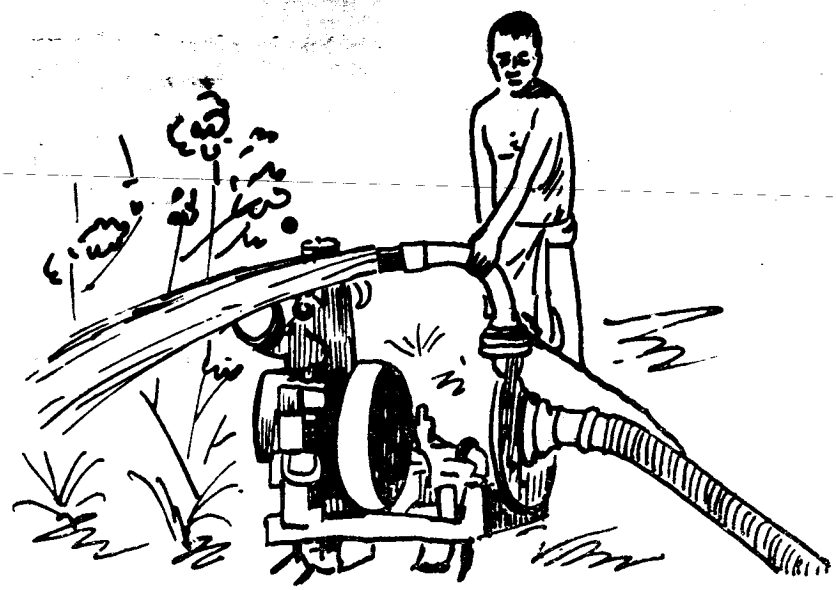

जनजाति-विकास के बढ़ते चरण

सभी पंचवर्षीय योजनाओं में पिछड़े वर्गों तथा पिछड़े क्षेत्रों के विकास के लिए जोर दिया जाता रहा है। भारत में जनजातियों के लगभग चार करोड़ लोग रहते हैं। इनमें से ज्यादातर लोग भारी गरीबी से जूझ रहे हैं। इन लोगों का जीवन स्तर बहुत ही नीचा होने के कारण यह है कि ये लोग सदियों पुराने सामाजिक और सांस्कृतिक बन्धन में जकड़े पड़े हैं और उस पर तुर्रा यह कि इनका वातावरण तथा इन इलाकों की प्राकृतिक संरचना भी प्रतिकूल है। भारत के संविधान में इस बात की व्यवस्था है कि देश के कमजोर वर्गों के शैक्षणिक और आर्थिक हितों को ध्यान में रखकर विशेष कदम उठाएं जाएं ताकि न तो उनका शोषण किया जा सके और न उन पर सामाजिक अन्याय हो सके। इसीलिए पिछली पांच साला योजनाओं में अनेक जनजाति-विकास कार्यक्रमों के अन्तर्गत समय समय पर काम किया जाता रहा है। जनजाति विकास के लिए कुछ संगठन कायम किए गए हैं और कुछ समन्वित विकास प्रायोजनाओं को हाथ में लेने का सुझाव है। इनका उद्देश्य देश के पिछड़े वर्गों के लोगों की आर्थिक स्थितियों को सुधारना है।

विकास खण्ड

सन् 1952 में देश में सामुदायिक विकास कार्यक्रम के चालू होने के बाद इस बात की जरूरत महसूस की जाने लगी कि इन जातियों के लिए ऐसे कार्यक्रम तैयार किए जाएं जो कि स्वयं उनके ही प्रयत्नों से उनकी उन्नति में सहायक हों।

इस बात को ध्यान में रखते हुए फरवरी-मार्च 1956 में विशेष बहुप्रयोजन

एम०ए० कुरेशी

नीय जनजाति विकास खण्ड दूसरी पंच वर्षीय योजना में स्थापित किए गए। इसके बाद, एलविन कमेटी की सिफारिशों के आधार पर इन खण्डों का नाम जन जाति विकास खण्ड रखा गया। इन खण्डों में समाज कल्याण की भावना से विस्तार पद्धति का भी समावेश किया गया।

देश के भिन्न-भिन्न भागों में जनजातियों के विकास के विभिन्न चरणों को ध्यान में रखते हुए, इन खण्डों के कार्यक्रमों का विस्तार किया गया। इस विस्तार कार्य को दो तरीकों से अमल में लाया गया। पहले तो इन खण्डों के लिए सामान्य राशि के अतिरिक्त कुछ और अधिक राशि की व्यवस्था की गई और दूसरे इन खण्डों में प्रत्येक खण्ड 25,000 आदमियों के लिए था जबकि सामान्य सामुदायिक विकास खण्ड 66,000 आदमियों के लिए होता है।

इन विकास खण्डों में जब कार्यक्रम लागू किए जाने लगे तो इसमें कुछ कठिनाइयां नजर आईं। पहली बात तो यह कि 25,000 की जनसंख्या एक खण्ड के लिए बहुत ही कम थी। इतनी कम आबादी के लिए किसी बड़े कार्यक्रम को हाथ में लेकर कामयाब बनाना व्यवहार्य नहीं है। दूसरी बात यह है कि पूरे कार्यक्रम को छोटे-छोटे टुकड़ों में बांट कर उन्हें अमल में लाना होता है जिससे कार्यक्रम का उन लोगों को पूरा-पूरा लाभ नहीं मिल पाता। एक बात और परेशानी की यह है कि ये क्षेत्र अधिकतर ऐसे पहाड़ी इलाकों में हैं जहां आसानी से नहीं पहुंचा जा सकता, इनमें घने जंगल हैं, यहां संचार की व्यवस्था भी उपयुक्त नहीं है। इसलिए यह सुझाव दिया जाता है कि इन विकास खण्डों को तो इनके वर्तमान रूप में चलने दिया जाए और चौथी योजना के दौरान और बड़े विकास खण्डों की व्यवस्था की जाए ताकि उन कार्यक्रमों से भरपूर फायदा उठाया जा सके।

विकास एजेन्सियां

इन एजेन्सियों के विशेष कार्यक्रम कुछ चुने हुए इलाकों में चौथी पंचवर्षीय योजना के उत्तरार्ध में प्रयोग के आधार पर चालू किए गए। इन कार्यक्रमों में जिस बात पर विशेष ध्यान दिया गया वह है आर्थिक पहलू जोकि इन कार्यक्रमों की जान है। आर्थिक पहलू में भी सबसे अधिक ध्यान छोटे किसानों और बहुत ही गरीब किसानों का रखा गया है ताकि इन क्षेत्रों की विशेष आवश्यकताओं को ध्यान में रखकर इन किसानों को आर्थिक रूप से अधिक मजबूत बनाया जा सके। इन कार्यक्रमों को जनजाति विकास एजे-

न्सियों के द्वारा लागू किया जा रहा है। ये एजेन्सियां 1860 के अधिनियम के अन्तर्गत पंजीकृत हैं। इस तरह की एजेन्सियां आन्ध्र प्रदेश, बिहार, मध्य प्रदेश तथा उड़ीसा में भी मौजूद हैं।

वास्तव में इन एजेन्सियों की कार्य पद्धति, केवल 'विस्तार' और 'कल्याण' की मूल भावना तक सीमित नहीं है बल्कि इस पद्धति में अब 'विनियोजन' यानी इन्वेस्टमेन्ट और विकास की भावना भी निहित है। पहले तो इन जाति के लोग केवल इतनी ही पैदावार लेने में श्रेय समझते थे कि उस पैदावार से उनका ही गुजारा चल जाए पर अब वे लोग ज्यादा से ज्यादा पैदावार लेना चाहते हैं ताकि वे फालतू उपज से पैसा कमा सकें। इस प्रकार एक ऐसा प्रयत्न चल रहा है ताकि ये लोग आर्थिक रूप से खुशहाल बन सकें और शोषण से मुक्त रह सकें।

इन एजेन्सियों में प्रत्येक के लिए पूरे पांच साल के लिए डेढ़ करोड़ रुपए की व्यवस्था की गई है। इसको विशेष रूप से कृषि विकास, छोटी सिंचाई, पशुपालन, अन्य सहायक धन्धों, सहकारी संस्थाओं के पुनर्गठन, भूमि सुधार, कृषि तथा जंगलों पर आधारित उद्योग आदि पर खर्च किया जाएगा। आमतौर पर विभिन्न आर्थिक कार्यक्रमों पर आने वाले व्यय की 50 से 75 प्रतिशत तक राशि को जनजातियों के परिवारों की सहायता के रूप में दिया जाता है। कभी-कभी तो यह सहायता शत-प्रतिशत तक दी जाती है जैसे कि थोड़ी अवधि के लिए प्रदर्शन कार्यक्रमों में यानी जैसी किसी किसान के खेत में कुछ सुधार और तरीकों का यदि प्रदर्शन करना हो तो उसका पूरा खर्च सरकार उठाती है। जैसे-जैसे किसानों की दशा सुधरती है तैसे-तैसे सहायता कम होती है। सड़कों के निर्माण के लिए अतिरिक्त राशि रखी गई है। इस पर 0.50 करोड़ रुपए खर्च होंगे। प्रायोजना क्षेत्रों और राजमार्गों को जोड़ने के लिए इन सड़कों का निर्माण होगा।

ये एजेन्सियां केवल उन्हीं किसानों को अपने कार्यक्रमों में भागीदार बनाने की आज्ञा देती है जिन किसानों के पास 2 हैक्टर से भी कम सिंचित खेती हैं या 4 हैक्टेयर असिंचित भूमि है। प्रत्येक एजेन्सी में लगभग 10,000 जनजाति परिवार होते हैं या 50,000 लोग।

ऋण सुविधा

जनजाति विकास कार्यक्रमों में आवश्यक ऋण सुविधाएं देने के लिए इस बात की जरूरत महसूस की गई कि प्रायोजना क्षेत्रों में सहकारी संगठनों का उपयुक्त रूप से पुनर्गठन किया जाए। इस सम्बन्ध में क्या कदम उठाए जाने चाहिएं इस बात पर विचार करने के लिए एक अध्ययन दल नियुक्त किया गया था। इस दल ने अध्ययन करने के बाद अपनी रिपोर्ट में इस बात पर जोर दिया कि वर्तमान सहकारी संगठनों को वैसा ही सरल और कारगर बनाया जाए जैसा कि राष्ट्रीय कृषि आयोग ने अपने सुझावों में सिफारिश की है। सहकारी संस्थाओं को बहुप्रयोजनीय होना चाहिए और वे इस तरह बनाई जाएं कि वे ऋण, विपणन, तथा अन्य कार्यक्रमों को समन्वित रूप से सम्भाल सकें। इस बात का जरूर ध्यान रखा जाए कि जन जाति के लोगों से इन संस्थाओं की देखरेख आदि का काम न हथिया लिया जाए। उन्हें अहसास हो कि वे इस के अगर लाभ उठाने वाले हैं तो इस के प्रबन्ध में भी साझीदार हैं।

किसी भी आर्थिक कार्यक्रम का स्थायी प्रभाव तब तक नहीं पड़ सकता जब तक कि जनजाति के लोगों को भरोसा न हो जाए कि उनकी भूमि पर उनके सामुदायिक एवं व्यक्तिगत हित सुरक्षित हैं और उन्हें ऋणों से मुक्त न किया जाए। ऋण मुक्ति अदालतें स्थापित करने की सिफारिश की गई है। उन्हें पिछले ऋण चुकाने के लिए सहायता दी जाती है और कोशिश की जाती है कि ये लोग किसी तरह कर्जों के जाल में बराबर उलझते न रहें। बहुत-सी जमीनों को गैर-जनजाति के लोगों ने गैर-कानूनी ढंग से हथिया लिया है। उन जमीनों को जनजाति के लोगों को वापस दिलाने की कोशिश की जाए इन इलाकों के खेती-बाड़ी के रिकार्डों को ठीक करने की कोशिश की जाएगी ताकि विकास कार्यक्रमों में गलत रिकार्डों से बाधा न पड़े।

बुनियादी कमियां

चौथी योजना के दौरान पिछले दो सालों से जनजाति विकास कार्यक्रम चालू है। अब तीसरा साल चालू हो गया। जब इस कार्यक्रम को लागू किया गया तो बुनियादी कमियां और खराबियां सामने आईं। इन्हें दूर करने के लिए आवश्यक कदम उठाए जाने चाहिएं। पहली कमी तो यह है कि यहां की स्थितियां प्रतिकूल हैं और यहां चिकित्सा तथा शिक्षा सम्बन्धी सुविधाओं की कमी है। यही कारण है कि यहां सरकारी कर्मचारियों को जाने और काम करने में हिचकिचाहट होती है। एजेन्सी अपने कर्मचारियों को काफी प्रोत्साहन देती है। चूंकि उक्त कार्यक्रमों को राज्य सरकारों के द्वारा अमल में लाया जाता है और राज्य सरकार के अन्तर्गत कोई समान संगठन होने की सम्भावना नहीं है, इसलिए इनके लिए भिन्न-भिन्न प्रोत्साहन प्रणालियां नहीं होनी चाहिएं। इस समस्या का हल विस्तार से राज्य सरकारों के साथ परामर्श कर किया जाना चाहिए। इसके अलावा, यह भी जरूरी है कि इन एजेन्सियों में काम करने वाले लोगों के लिए सुदूर भागों में रहने की यानी आवास की उपयुक्त व्यवस्था की जानी चाहिए।

दूसरी बात यह है कि बरसात के दिनों में इन क्षेत्रों में आवागमन बहुत मुश्किल होता है। जब तक कि जगह-जगह मिलाने वाली सड़कों का निर्माण पूरा नहीं किया जाता, इन परेशानियों का सामना करना ही पड़ेगा। सड़कों का निर्माण न होने के परिणामस्वरूप कृषि के कार्यक्रमों की भली भांति देखरेख नहीं की जा सकती, विशेष रूप से उस समय जबकि देखरेख की खास

जरूरत होती है। इसलिए ऐसे अवसरों के लिए पहले से ही उपयुक्त कर्मचारियों को तैनात किया जाना चाहिए।

तीसरी बात यह है कि पशुओं के आहार व चारे आदि के दाम बढ़ जाने के कारण और अच्छी नस्ल वाले पशुओं के पर्याप्त मात्रा में न मिलने के कारण कहीं-कहीं पशुपालन कार्यक्रम में बाधा पहुंचती है। इसके लिए पहले से ही योजना तैयार की जानी चाहिए। एजेन्सी पशुओं के चारे-दाने के लिए कुछ पैसे सहायता के रूप में दे सकती है।

अब तक के अनुभवों के आधार पर कहा जा सकता है कि जनजातियों में पेचीदा किस्म की मिली-जुली खेती की पद्धति लोकप्रिय नहीं हो पाई क्योंकि वे इस पद्धति के लाभ-हानि से परिचित न हो सके।

क्षेत्र अधिकारियों को जनजातियों की भाषा का ज्ञान होना चाहिए और प्रायोजना क्षेत्रों में उपयुक्त प्रशिक्षण कार्यक्रम चलाए जाएं।

पांचवीं योजना

हमारे विशाल देश में जनजातियों का एक बहुत बड़ा क्षेत्र है। इतने बड़े क्षेत्र के विकास के लिए छः जनजाति विकास एजेन्सियां ऊंट के मुंह में जीरे के समान है। इतने बड़े क्षेत्र को शेष भारत की सुख समृद्धि के समानान्तर लाना कोई हंसी खेल नहीं है और सच तो यह है कि उक्त एजेन्सियों का इतने बड़े भार को सम्भालना इनकी क्षमता के बाहर है। हमारी पांचसाला योजना के दो बुनियादी लक्ष्य है। एक है गरीबी को हटाना और दूसरा है आर्थिक दृष्टि से आत्मनिर्भरता। इस सन्दर्भ में यह स्वाभाविक ही है कि पिछड़े इलाकों और पिछड़े वर्गों को प्राथमिकता दी जाए यानी पहले इनकी जरूरतों को देखकर इन पर ध्यान दिया जाए। पांचवीं योजना में इस भारी भरकम दायित्व को देखकर दो और विकास एजेन्सियों का प्रावधान है। इन एजेन्सियों के भी वैसे ही कार्यक्रम हैं। केन्द्रीय कृषि क्षेत्र में इस तरह की एजेन्सियां स्थापित करना शायद सम्भव नहीं है क्योंकि देश में साधनों की कमी है। पांचवीं योजना में इन प्रायोजनाओं के लिए लगभग 10 करोड़ रुपए का प्रावधान है।

दूसरी तरफ अलग-अलग क्षेत्रों के लिए कुछ दूसरे केन्द्रीयचालित कृषि कार्यक्रमों को अमल में लाने के लिए कुछ राशि की व्यवस्था की गई है ताकि सूक्ष्माग्रस्त कार्यक्रमों जैसे कार्यक्रमों को चलाया जा सके। विशेष कार्यक्रमों को चालू करने के लिए पांचवीं योजना में इन जन जाति क्षेत्रों के लिए लगभग 113 करोड़ रुपए की व्यवस्था है।

जिन राज्यों की जनसंख्या अधिक है उन्हें यह सलाह दी गई हैं कि जनजाति क्षेत्रों के आर्थिक विकास के लिए प्रारम्भिक उपाय उन्हें ही करने चाहिएं और राज्य सरकारों जिन वर्तमान कार्यक्रमों को चला रही है उनमें किसी तरह की कमी न आने पाए। विभिन्न विशेष कार्यक्रमों के अन्तर्गत चलने वाली विभिन्न केन्द्रीय अग्रिम प्रायोजनाएं केवल उनकी सहायता और बढ़ाने के लिए है। इस प्रकार राज्य सरकारें कुछ ढील न दें।

परियोजनाएं

जनजातियों के विकास के लिए तथा पिछड़े वर्गों की भलाई के लिए क्षेत्रों के हिसाब से राज्यों को लगभग 200 करोड़ रुपए की राशि का प्रावधान पांचवीं पंचवर्षीय योजना में किया गया है। जिन राज्यों में जनजातियों की भारी आबादी है, उनसे कहा गया है कि वे अपनी जन जातियों के लिए उपयोजनाएं तैयार करें और स्पष्ट रूप से बताएं कि विभिन्न क्षेत्रों से जन जातियों के इलाकों के लिए कितने साधन प्रयोग में लाए जाएंगे। कुछ राज्य जैसे उड़ीसा, राजस्थान, आन्ध्र प्रदेश, हिमाचल प्रदेश, उत्तर प्रदेश, आदि ने तो अपनी अपनी उपयोजनाएं तैयार भी कर ली हैं। राज्यों से यह आशा की जाती है कि वे अपने अपने जनजातियों वाले क्षेत्रों की उपयोजनाओं के लिए समन्वित विकास परियोजनाओं का प्रावधान रखें। प्रस्तावित समन्वित जनजाति विकास प्रायोजनाओं को इस बात को ध्यान में रख कर माना गया है कि उनमें सामाजिक आर्थिक पहलुओं पर ज्यादा जोर दिया जाए। ये प्रायोजनाएं राज्यों के क्षेत्रों में आठ केन्द्रीय क्षेत्रीय योजनाओं के अतिरिक्त चलेंगी। जब समन्वित जनजाति विकास प्रायोजनाएं चल पड़ेंगी तो ये जिले नियमित विकास प्रशासन का अंग बन जाएंगी। जनजाति विकास खण्ड को समन्वित विकास प्रायोजना की प्रणाली में शामिल कर लिए जाने का कार्यक्रम है। केन्द्रीय स्तर पर इनकी देखरेख करने के लिए एक उच्चस्तरीय केन्द्रीय समन्वय समिति है जिसमें महत्वपूर्ण मन्त्रालयों के सचिव तथा योजना आयोग के सदस्य हैं। इसके अध्यक्ष गृह मन्त्रालय के राज्यमन्त्री हैं। यह समिति उन महत्वपूर्ण मसलों पर विचार करेगी जो कि विभिन्न जनजाति क्षेत्रों में विकास कार्यक्रमों को लागू करने में सामने आते हैं। उक्त समिति विचार विमर्श के लिए इस सम्बन्ध में आवश्यक नीति निर्धारित करती है।

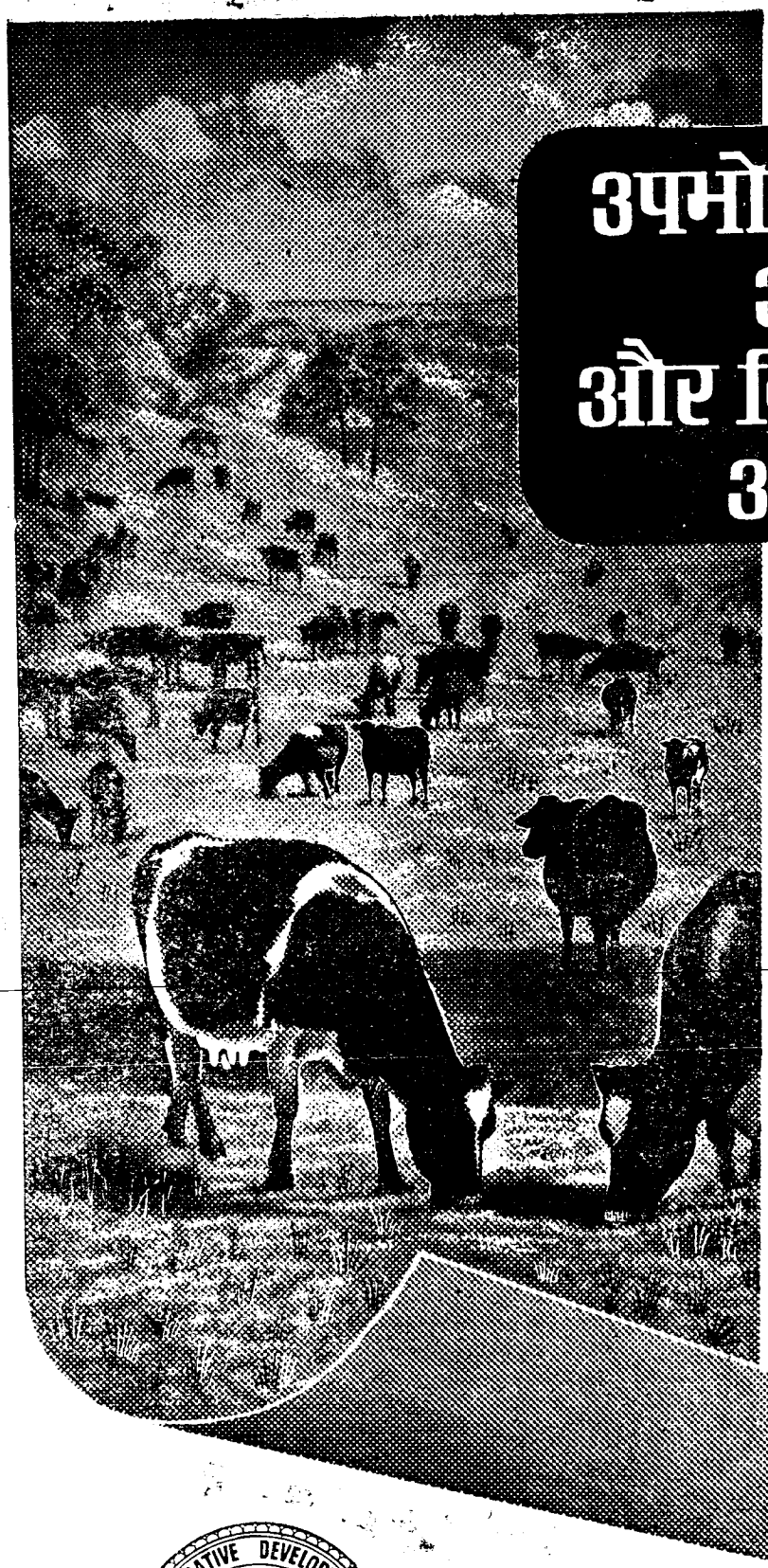

उपभोक्ताओं के लिये अधिक दूध और किसानों के लिये अधिक आय

सहकारी डेरी यह सब संभव बनाती है

खेड़ा मिल्क को-आपरेटिव का **'अमुल'** आज एक घरेलू नाम है–लेकिन सहकारी क्षेत्र में केवल एक यही दुग्ध संस्थान नहीं है। इस समय 40 सहकारी डेरी संस्थान हैं जिनके नीचे 13000 सहकारी समितियां दूध एकत्रित करने और प्रासेस करने का कार्य करती हैं।

कृषि में विविधता लाने, किसानों की आय बढ़ाने और लोगों को पौष्टिक भोजन प्रदान करने के लिये सहकारी डेरी संस्थान ही एकमात्र उपाय है।

राष्ट्रीय सहकारी विकास निगम सहकारी क्षेत्र में डेरी संस्थानों की स्थापना के लिये योजना, प्रोत्साहन और धन प्रदान करता है। निगम ने 20 सहकारी डेरी संस्थानों को दुग्ध-प्लांट लगाने तथा दुग्ध-पदार्थों के निर्माण हेतु कारखाने लगाने के लिये 4 करोड़ रुपये अनुमोदित किये हैं।

सहकारी दुग्ध समितियों के विकास के लिये निगम का विशाल कार्यक्रम है।

NATIONAL CO-OPERATIVE DEVELOPMENT CORPORATION ★ NEW DELHI ★ सहयोग

राष्ट्रीय सहकारी विकास निगम

(नेशनल को-आपरेटिव डिवेलपमेंट कार्पोरेशन)

(भारत सरकार का संस्थान)

मुख्य कार्यालय : सी-56, साउथ एक्सटैंशन (II), नई देहली-110049

क्षेत्रीय कार्यालय : बंगलोर ○ भोपाल ○ कलकत्ता ○ चंडीगढ़ ○ गौहाटी ○ पटना ○ पूना

जनजातीय और पर्वतीय क्षेत्र विकास की ओर अग्रसर

आर० के० मिश्र

देश में खाद्यान्न की कमी पूरी करने और बढ़ती हुई कीमतों को रोकने के लिए कृषि उत्पादन बढ़ाना जरूरी है। इसके साथ ही यह भी जरूरी है कि सामाजिक असमानता समाप्त हो। जहां तक सम्भव हो, हर व्यक्ति को समान अवसर और उचित लाभ प्राप्त हो। ऐसा होने पर ही गरीब और पिछड़े लोग उभर पाएंगे तथा देश के विकास कार्यों में उत्साह दिखाएंगे। जब अविकसित क्षेत्रों की ओर भी ध्यान दिया जाने लगेगा तो वहां के किसान भी खेती के आधुनिक तौर-तरीके तथा उन्नत तकनीकों को अपनाने लगेंगे। हमारी योजनाओं का लक्ष्य चुने हुए क्षेत्रों में विभिन्न कार्यक्रम लागू करके अधिकाधिक उत्पादन प्राप्त करना है परन्तु, इस बात का भी बराबर ध्यान रखना होगा कि कहीं ऐसा न हो जाए कि विकसित क्षेत्रों का तो निरन्तर विकास होता रहे तथा पिछड़े क्षेत्र अधिक-पिछड़ते चले जाएं। ऐसे पिछड़े और उपेक्षित क्षेत्रों का आर्थिक विकास करने के उद्देश्य से बहुत से विशेष कार्यक्रम चलाए जा रहे हैं।

जनजातीय और पर्वतीय क्षेत्रों के आर्थिक पिछड़ेपन की समस्या का समाधान खोजने के लिए इन क्षेत्रों में चौथी पंचवर्षीय योजना के अन्तिम चरण में जनजातीय विकास एजेंसी और पर्वतीय क्षेत्र विकास एजेन्सी नामक केन्द्रीय कार्यक्रम प्रायोगिक आधार पर शुरू किए गए थे। जनजातीय विकास सम्बन्धी परियोजनाएं आन्ध्रप्रदेश के सिरीकाकुलम, विहार के सिंघभूमि मध्य प्रदेश के बस्तर और उड़ीसा के गंजम, कोरापुट, क्योंझार और फुलबनी जिलों में तथा पर्वतीय क्षेत्र विकास सम्बन्धी परियोजनाएं उत्तरप्रदेश के पौड़ी गढ़वाल और मणिपुर के नुंग्बा जिलों में हैं। ये सारी परियोजनाएं पांचवी पंचवर्षीय योजना में भी चालू रहेंगी।

पहली छः जनजाति परियोजनाओं में से प्रत्येक के लिए 2 करोड़ रुपए के खर्च की व्यवस्था है जिसमें से 1·5 करोड़ रुपए आर्थिक विकास के मुख्य कार्यक्रमों के लिए और 50 लाख रुपए छोटी-छोटी सड़कों के निर्माण के लिए हैं। बाकी दो जनजातीय क्षेत्र विकास परियोजनाएं और दो पर्वतीय क्षेत्र विकास परियोजनाएं अभी हाल में शुरू हुई हैं। इनमें से प्रत्येक के लिए 1.5 करोड़ रुपए की व्यवस्था है। पांचवी पंचवर्षीय योजना में जनजातीय परियोजनाओं के लिए 10 करोड़ रुपए और पर्वतीय क्षेत्र परियोजनाओं के लिए 3 करोड़ रुपए की व्यवस्था है।

इन परियोजनाओं में कृषि के सर्वांगीण विकास के साथ-साथ सहायक व्यवसायों और अन्य सुविधाओं के विकास पर भी जोर दिया गया है। आर्थिक कार्यक्रमों के अन्तर्गत कृषि और बागवानी के विकास, भूमि विकास और भूमि संरक्षण, पानी और बिजली के विकास, भूमिहीन परिवारों को बसाने के कार्य, बदलती खेती की रोकथाम, जंगलात में खेती और वनरोपण के उपायों पर ध्यान दिया जाएगा। पशुपालन, सूअर, भेड़ और बकरी पालन, मुर्गी और बतख पालन, मछली पालन, मधुमक्खी पालन, रेशम उत्पादन, लघु, कुटीर और ग्राम उद्योगों को बढ़ावा दिया जाएगा। सहकारी समितियों और विपणन की उचित व्यवस्था के साथ-साथ मुख्य सड़कों से जोड़ने वाली सड़कें और कुछ क्षेत्रों में छोटी-छोटी सड़कों के निर्माण पर ध्यान दिया जाएगा। आदिवासी कर्ज से दबे हुए हैं। उनको कर्ज से मुक्त कराने का अभियान चलाया जाएगा। उनकी जमीनों को दूसरों द्वारा छीने जाने से रोकने तथा जिनकी जमीनें छिन गई हैं उन्हें वापिस दिलाने के भी प्रयत्न किए जाएंगे। इन कार्यक्रमों के लिए राज्य सरकारों के पूरे सहयोग की आशा है।

जनजातीय और पर्वतीय क्षेत्रों को इन परियोजनाओं के लिए वित्तीय व्यवस्था अतिरिक्त रूप में होगी। यह

व्यवस्था राज्य सरकारों द्वारा संचालित सामान्य सामुदायिक विकास, और पहाड़ी क्षेत्र विकास कार्यक्रमों के लिए दी जाने वाली वित्तीय व्यवस्था के अलावा होगी। यह कार्यक्रम जिला विकास प्रशासन द्वारा ही कार्यान्वित किया जाएगा और कोई समानांतर संगठन बनाने का विचार नहीं है। हां, जहां आवश्यकता होगी वहां राज्य सरकारें इस विशेष कार्यक्रम के लिए कुछ अतिरिक्त कर्मचारियों की व्यवस्था करेंगी। परियोजना एजेन्सी भी कुछ कर्मचारियों का प्रबन्ध करेगी। वित्तीय संस्थान और सहकारी संगठन भी जनजातीय और पर्वतीय क्षेत्रों के लोगों के लाभ के लिए आवश्यक योगदान देंगे।

जनजातीय और पर्वतीय क्षेत्र देशके दो तिहाई भाग में फैले हैं जहां कुल जनसंख्या का एक तिहाई भाग रहता है। यद्यपि विभिन्न योजनाओं द्वारा इन क्षेत्रों में कृषि उत्पादन बढ़ाने का प्रयत्न किया गया है, किन्तु फिर भी देश के अन्य भागों के उत्पादन जितना नहीं हो पाया है। अब भी अन्य भागों की अपेक्षा यहां उत्पादन केवल 50 प्रतिशत ही है। इन से संचार व्यवस्था और विपणन की पर्याप्त सुविधाओं के अभाव के कारण ये क्षेत्र आधुनिक कृषि से लाभान्वित नहीं हुए हैं।

मैदानी इलाकों के मुकाबले इन क्षेत्रों की समस्याएं अधिक जटिल और कष्टसाध्य हैं। इनके विकास में बहुत सी बातें अवरोध उत्पन्न करती हैं जिनमें मुख्य हैं :—

(क) इन क्षेत्रों के लोगों में पहल की कमी और नए कार्यक्रमों को अपनाने के प्रति रुचि का अभाव;

(ख) संगठनों और संस्थाओं के प्रति उपेक्षा का भाव,

(ग) आवश्यक सर्वेक्षण और अनुसन्धान कार्य की कमी,

(घ) आवश्यक आंकड़ों की कमी और तथ्यों की जानकारी का अभाव,

(ङ) परम्परा से चला आ रहा आर्थिक पिछड़ापन और आधुनिक तरीकों और खोजों की जानकारी का अभाव,

(च) यहां की परिस्थितियां विकास के लिए और पूंजी निर्माण के लिए प्रतिकूल हैं तथा लोगों में व्यावसायिक पहल के प्रति उत्साह नहीं है,

(छ) भूमि पर काम करने वाले लोगों की संख्या भी सही अनुपात में नहीं है, तथा

(ज) अर्थव्यवस्था का आधार भी कमजोर है।

जनजातीय और पहाड़ी लोग अपनी असावधानी के कारण शोषण के शिकार हो जाते हैं। यह शोषण भी इन क्षेत्रों के पिछड़ेपन का एक मुख्य कारण है। आदिवासियों से अच्छी जमीनें छीन ली जाती हैं और उनको ऐसी जमीनों पर गुजारा करना पड़ता है जो कृषि के लिए उपयुक्त नहीं होती है। उनको अपने कृषि उत्पादन की उचित कीमत भी नहीं मिलती। इसलिए बिचौलियों, साहूकारों और भ्रष्ट व्यापारियों की कार्यवाहियों पर नजर रखनी होगी जिससे वे आदिवासियों को धन और लाभ से वंचित न कर सकें।

आदिवासी और पहाड़ी क्षेत्रों में भूमि प्रदेश अधिकतर चट्टानी और ऊंचा-नीचा होता है। कृषि योग्य जमीन बहुत कम होती है। सिंचाई की व्यवस्था बहुत कम है और अन्य लोगों के मुकाबले आदिवासियों के पास सिंचित जमीन भी बहुत कम है। आधुनिक कृषि पद्धति, बहुफसली कार्यक्रम, और अधिक उपज देने वाली किस्मों का यहां अभाव सा है। लेकिन कुछ घाटियां और स्थान

ऐसे हैं जिनको खेती योग्य बनाया जा सकता है। इन क्षेत्रों के पिछड़ेपन का कारण मात्र प्राकृतिक साधनों की कमी ही नहीं बल्कि इनके विकास के लिए आवश्यक कार्यों की कमी और उपेक्षा भी है। इन क्षेत्रों में सम्भावित विकास केन्द्रों, पर्यटनस्थलों और धार्मिक स्थानों, सड़कों के पास के गांवों और जल साधनों के पास के भागों में आर्थिक गतिविधियों को शुरू किया जा सकता है। इनका आर्थिक विकास आधुनिक कृषि साधनों, खाद के उचित उपयोग, कार्यक्रमों को इन लोगों द्वारा अपनाने पर निर्भर है। इसके साथ-साथ फसलों को प्राकृतिक प्रकोप और जंगली जानवरों से बचाने की आवश्यकता है।

छोटी-छोटी जोतें भी इस क्षेत्र की एक समस्या हैं। इन भागों में 63 प्रतिशत ग्रामीण परिवारों के पास 2.5 एकड़ से कम जमीनें हैं। इसलिए यहां उत्पादन बढ़ाने के लिए अधिक उपज देने वाली किस्मों के विकास की आवश्यकता है।

इन भागों में सिंचाई साधनों की कमी है। इन पर खर्च भी बहुत आता है। पहाड़ी क्षेत्रों में पानी के स्रोतों को ढूंढना होगा। साथ ही पानी के उचित प्रयोग की प्रणाली भी तैयार करनी होगी। खेती योग्य भागों के पास पानी इकट्ठा करने के लिए जलाशय बनाने होंगे। पम्पसैट और सिंचाई के लिए छोटी-छोटी नहरों की व्यवस्था करनी होगी जिससे आवश्यकता के समय सिंचाई की जा सके। अधिक ऊंचाई और पहुंच से बाहर होने के कारण इन साधनों की व्यवस्था पर खर्च अन्य भागों की अपेक्षा बहुत अधिक आता है। इस लिए इन क्षेत्रों में लागत और लाभ का अनुपात मैदानी इलाकों जितना नहीं हो सकता।

पहाड़ी क्षेत्रों में, विशेषकर वर्षा ऋतु में, भू-स्खलन का सामना करना पड़ता है। इससे जान और माल की भारी हानि होती है। वर्षा ऋतु में पानी तेज धार से बहने के कारण बहाव के क्षेत्र में मिट्टी की बनावट में भी परिवर्तन आ जाता है। कुछ भागों में बांध बनाने, जल प्रवाह के रास्ते बनाने जैसे कदम उठाने की आवश्यकता है। भूस्खलन रोकने के लिए वनरोपण की आवश्यकता है।

जनजातीय और पर्वतीय क्षेत्रों में संचार व्यवस्था और माल इधर उधर ले जाने के साधनों की बहुत कमी है। कुछ जगह रेलें हैं लेकिन उत्पादन क्षेत्र से बहुत दूर पड़ती हैं। पहाड़ी प्रदेश होने के कारण परिवहन जंगल के रास्तों से होता है। सामान को या तो लोग सिर पर उठा कर ले जाते हैं या फिर घोड़ों, खच्चरों, टट्टुओं और गधों का सहारा लेते हैं। कहीं-कहीं नाव का प्रयोग भी होता है। इसलिए यहां यथाशीघ्र सारे साल उपयोग में आनेबाली सड़कें और संचार व्यवस्था बनाने की आवश्यकता है। ये इन भागों का पिछड़ापन दूर करने में बहुत सहायक होगी।

इसी प्रकार इन क्षेत्रों में मुख्य सड़कों से मिलाने वाली योजक सड़कों और गोदामों की बहुत कमी है। इनके बनाने की बहुत आवश्यकता है जिससे जरुरत की वस्तुएं भीतरी भागों तक पहुंचाई जा सकें और वहां के उत्पादन को बाहर तक लाया जा सके।

कुछ ऐसे भागों को छोड़कर जो नगरों के पास हैं, उत्पादन की बिक्री की भी कठिनाई है। इसलिए सड़कों और गोदामों के निर्माण के साथ बिक्री केन्द्रों और मण्डियों के विकास की भी आवश्यकता है।

इन क्षेत्रों में जो उत्पादन होता है उसका उचित मूल्य किसानों को नहीं मिल पाता। कुछ व्यापारी इन भागों में आकर उनका खूब शोषण करते हैं। इस शोषण से किसानों को बचाने के लिए उनके उत्पादन राज्य सरकारों या सरकारी निगमों और सहकारी समितियों द्वारा खरीदे जाएं ताकि उन्हें उचित मूल्य मिल सके।

इन क्षेत्रों में तकनीकी व्यक्तियों की भी कमी है। यहां नियुक्त कर्मचारी काम करने से कतराते हैं। स्थानीय लोग इतने पढ़े हुए और आधुनिक नहीं हैं कि उनकी जगह ले सकें। इसलिए जब तक स्थानीय लोग इन कामों के लिए प्रशिक्षित नहीं होते तब तक राज्य सरकारों को चाहिए कि वे तकनीकी कर्मचारियों को अतिरिक्त लाभ देकर वहां काम करने के लिए भेजें।

यहां पर आवश्यक रिकार्ड भी बहुत कम उपलब्ध हैं। साथ ही जातिगत भूमिस्वामित्व की प्रणाली यहां की विशेषता है। इसलिए सबसे पहले यहां भूमि-स्वामित्व के रिकार्ड आधुनिक तरीके से तैयार करने होंगे जिससे ये लोग वित्तीय संस्थाओं से लाभ उठा सकें।

इन सबके अतिरिक्त और भी बहुत सी समस्याएं हैं जिनमें से मुख्य हैं आवश्यक वस्तुओं की कमी, अदल-बदल का व्यापार, खाली समय में नौकरी की सुविधाओं की कमी, खरपतवार की समस्या, सहकारी संस्थाओं की बिगड़ती स्थिति, पशुओं की देखभाल के लिए सुविधाओं की कमी। इनको भी दूर करने की आवश्यकता है।

जनजातीय क्षेत्र विकास एजेंसी और पर्वतीय क्षेत्र विकास एजेंसी इन क्षेत्रों की समस्याओं की जानकारी कृषि और जनजातीय अनुसन्धान संस्थाओं को देती रहेंगी। ये परियोजनाएं यहां के आर्थिक उन्नयन के लिए उचित कार्यप्रणाली खोजेंगी और हर सम्भव प्रयास करके यहां विकास की किरणें पहुचाएंगी। यहां चले आ रहे परम्परागत अलगाव, सुविधाओं के अभाव, रहन-सहन की कठिन स्थितियों और मौसम की विषमताओं से जूझने के लिए जी तोड़ प्रयास करने होंगे। हमें विश्वास है कि परियोजनाओं के अधिकारीगण और सभी कार्यकर्त्ता अपने काम की महत्ता को समझते हुए इन दोनों के विकास के लिए हर सम्भव प्रयत्न करेंगे। □

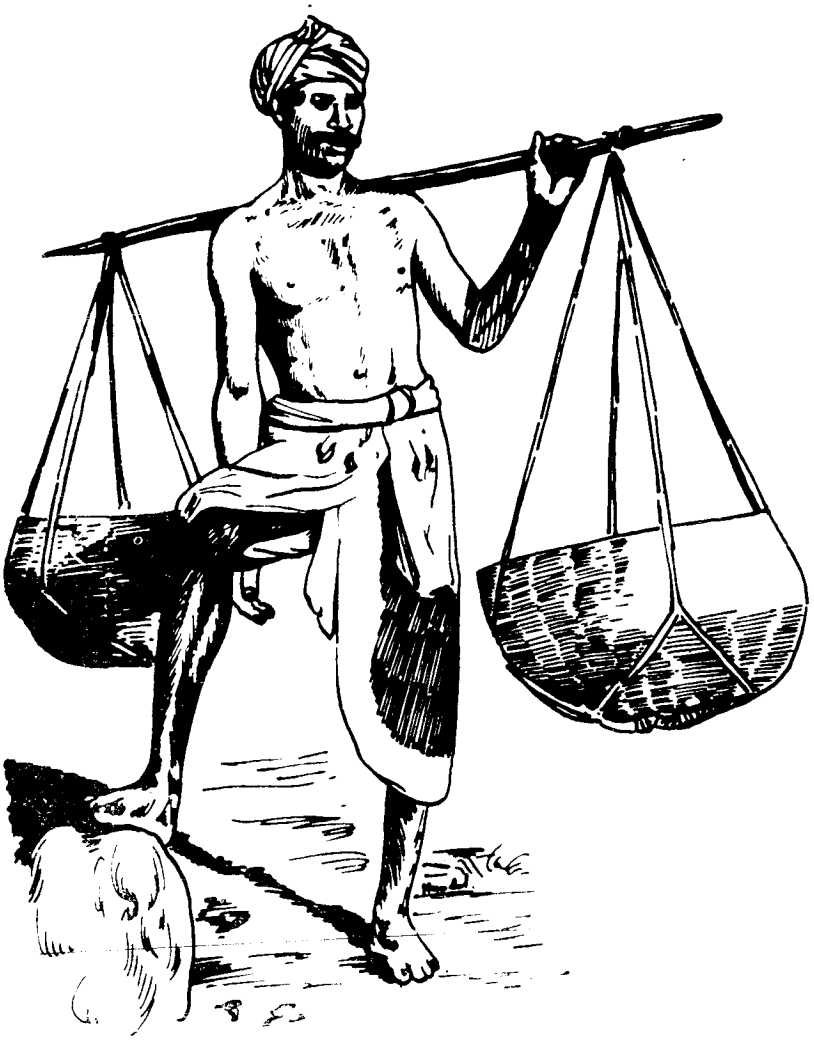

राजस्थान के गिरासिया भील

अक्षय कुमार जैन

अपनी राजस्थान यात्रा के दौरान जब हम नाथद्वारा से राणकपुर जा रहे थे तब मार्ग में एक ऐसे स्थान पर ठहरने का अवसर प्राप्त हुआ जहां सामने की ओर एक छोटी सी पहाड़ी दिखाई देती थी। इस पहाड़ी पर ही गिरासिया भीलों के कुछ परिवार रहते हैं।

गिरासिया भील अपने प्रकार के खुद ही हैं। छरहरा बदन, उन्नत ललाट, सुआ जैसी नासिका, शरीर पर सटी सिरजई और सिर पर बंधी पगड़ी उनके व्यक्तित्व को अलग निखार देती है। पैरों में टांगों से लिपटी धोती ढीली ढाली नहीं होती बल्कि मजबूत काम के लिए उपयुक्त पोशाक है। दोनों ओर चढ़ी मूंछें और संवारी दाढ़ी बादामी रंग के चेहरे को शालीन बनाती है। बांकी राजपूती शान ऐसी कि जंगल का राजा सामने पड़ जाए तो उसे भी शीश झुकाना पड़े।

भील काम में बड़े पक्के हैं। इस पहाड़ी पर उन्होंने अपनी झोंपड़ियां दूर-दूर बनाई हैं। पास-पास की भीड़-भाड़ उन्हें पसन्द नहीं। अब वे खेती की ओर उन्मुख हुए हैं। जो पहाड़ी भूमि उन्हें उपलब्ध हुई है उसमें फसलें देखीं तो लगा कि जिस काम में ये हाथ डालेंगे अच्छा ही करेंगे।

फरहाद की नहर

सिचाई के लिए पानी की कठिनाई उन्हें हुई, लेकिन शत्रु का मान भञ्जन करने वालों के लिए यह कठिनाई मार्ग न रोक पाई। उन्होंने पहाड़ को काटा और ऊपर से छः मील लम्बी नाली अपने खेतों तक ले आए। उस नाली का शीतल जल हमने हाथों से भरकर पीया तो लगा कि खेती शीरी के लिए बनाई गई फरहाद की नहर से पानी पीया हो।

जब हम पहाड़ पर ऊपर पहुंचे तो गिरासियाओं के सरदार ने मुंह पर हाथ रखकर ऐसा स्वर निकाला जैसा टार्जन की फिल्मों में निकलता सुना जाता है। थोड़ी देर में कुछ नर और नारियां वहां आ गईं। उस पहाड़ी पर जो स्कूल बनाया जा रहा है उसकी अधबनी इमारत के सामने हम लोग रुक गए। भील सरदार के कन्धे पर बन्दूक रखी थी और उस बन्दूक का उपयोग जंगली जानवरों से रक्षा के लिए कम, किन्तु उसकी मान प्रतिष्ठा के प्रदर्शन के लिए अधिक होता दिखाई दिया।

जब नर-नारी आ गए, तो उनमें एक नवयुवती भी आई, जो सरदार की पुत्री थी। उसकी छरहरी काया, गेहूं, जैसा साफ रंग, कुशल शिल्पी द्वारा गढ़े अंग, शरीर पर कसी फतुई, कमर पर फैला घेरदार घाघरा, और सिर पर बूंदी-दार ओढ़नी असके सौन्दर्य और सुशीलता को चार चांद लगा रहे थे। माथे पर लटकता बोरला और नाक में पहने आभूषण उन बड़ी-बड़ी हिरनी जैसी आंखों को एक निराली छवि प्रदान कर थे। उसने थोड़ा सा सिर झुकाया और

हमें नमस्कार किया तो हमें लगा कि उस पहाड़ों की पुत्री ने हमें मान देकर धन्य किया हो। उसका नाम हमने पूछा तो धीरे से रुके हुए स्वर में उत्तर मिला, 'गजरा' मानों उन बेपढ़े लिखे भीलों ने सोच-समझ कर ही उसका नामकरण किया हो।

सहनृत्य

उसकी छोटी बहन रूपा शरीर में भारी और स्वभाव की गम्भीर लगी। एक-दो और भील रमणियों ने भी नृत्य के लिए पैर बढ़ाए। नर भी सह-नृत्य में शामिल हो गए। एक युवक भील ने ढ़ोल लिया और बजाना आरम्भ कर दिया। दिन के प्रकाश में उन्होंने जो समां बांधा, वह रात की तारीकी में क्या कुछ होता होगा उसकी कल्पना हम सहज ही कर सके।

नृत्य यदि कुछ देर और चलता तो हम लोगों के पैर भी उधर निश्चित रूप से मुड़ जाते पर हमारा मन-मयूर तो उनके साथ नाचता ही रहा। नृत्य समाप्त हुआ, तो हमने आगे बढ़कर गजरा से पूछा "तुम्हारा विवाह हो गया ?" प्रश्न शायद अनपेक्षित था, इसलिए उत्तर कुछ रुककर आया, "नहीं"। इतने में सरदार पिता ने पुत्री की सहायता की और हमें बताया कि उस लड़की को पास-पड़ौस के युवक पसन्द नहीं आए। उसका विवाह उसी के लायक किसी युवक के साथ कहीं दूर किया जाएगा।

विवाह कैसे ?

विवाह उनमें कैसे होता है ? यह जानने की उत्सुकता हमें हो गई। जो कुछ मालुम हुआ वह मध्यवर्गीय परिवारों को शायद अचरज का सा लगे। जब लड़की बड़ी होने लगती है तब वह शाम के सह-नृत्य में सम्मिलित होती है। चतुर माता-पिता यह देखते हैं कि उसका दिल किस युवक की ओर आकृष्ट होता है। यह नहीं कि उस युवक के साथ उसका विवाह कर दिया जाए। होता यह है कि दोनों जने नाचते-नाचते भाग खड़े होते हैं और कहीं दूर चले जाते हैं। पिता उनका पीछा करता है। यदि पकड़े गए तो पिटाई होती है और विवाह नहीं होता। अगर हाथ न आए तो कन्या की माता अपने भावी जमाता को टीका कर देती है और तब विवाह सम्पन्न होता है। ठीक भी है, जो उस सिंहनी को लेकर भागने तक का शौर्य नहीं रखता, वह उसकी रक्षा क्या कर सकेगा ? इसलिए पकड़े जाने पर विवाह क्यों किया जाए। पर, जो प्रौढ़ पिता की पहुंच से दूर भाग जाए वह तो यह सिद्ध कर ही देता है कि उसमें साहस और बहादुरी की कमी नहीं, वह उस युवती के योग्य है।

विरह के लम्बे दिन

पर असली पाणिग्रहण संस्कार तब पूर्ण माना जाता है जब पहले बिरादरी को भोज दिया जाए। आर्थिक विपन्नता कभी-कभी वर्षों तक विवाह नहीं होने देती और यह सहज ही सोचा जा सकता है कि वे बीच के दिन उन पहाड़ियों के लिए भी पहाड़ जैसे क्या न लगते होंगे ? हम शहरियों के लिए इस प्रकार के विवाह मात्र कल्पना ही की चीज हैं।

प्रकृति जैसा सौन्दर्य

गजरा उस सौन्दर्य की प्रतीक लगी, जिस पर कभी खिलजी आसक्त हो गया था। पर निश्चय ही वह सौन्दर्य निरखने की चीज है। उपासना की चीज है। अरावली के उस सौन्दर्य की किसी आधुनिका के सौन्दर्य से तुलना नहीं की जा सकती। एक शीतल है तो दूसरा उष्ण। एक को देखकर सन्तोष होता है तो दूसरे को देखकर असन्तोष। एक स्वस्थ, सुशील और प्रकृति का सौन्दर्य है तो दूसरा प्रसाधनों का, प्रकृति की नकल-मात्र मानों एक असली फूलों का गजरा है तो दूसरा कागज के फूलों का गुलदस्ता।

प्रधान सम्पादक,
नवभारत टाइम्स,
नई दिल्ली 11001

क्या आप 40 से ऊपर हैं?

ज़रा अपने भविष्य के लिए भी सोचिए
अपनी पेंशन की व्यवस्था कीजिए

हमने एक विशेष योजना बनाई है जिसमें शामिल होकर आप रिटायर होने के बाद भी आराम से जिन्दगी बिता सकते हैं। अगर आप अगले सात वर्षों तक राष्ट्रीय बचत पत्र (पंचम निर्गम) में प्रति महीने 100 रु० लगाते जाएं तो 1981 से आपको सात वर्षों तक प्रति महीने 198 रु० मिलते रहेंगे।

1981 के बाद अतिरिक्त फायदे

1981 के बाद भी इस योजना को जारी रखिए अगले सात वर्षों तक केवल 2 रु० महीने जमा करिए और नए बचत पत्र खरीदिए। 1988 के बाद, आपको अगले 7 वर्षों तक हर महीने 396 रु० मिलेंगे।

आपकी 100 रु० महीने की बचत लगभग चार गुनी हो जाएगी।

इस स्कीम के लिए कोई आयु-सीमा नहीं है। यह सभी स्त्री पुरुषों के लिए खुली है।

यह जरूरी नहीं है कि आप 100 रु० महीने ही बचाएं। आप 200, 300 या 500 रु० प्रति महीने भी बचा सकते हैं। इससे आपको अधिक फायदा होगा।

आप क्या बचाते हैं		आपको क्या मिलता है
पहले 7 वर्ष	दूसरे 7 वर्ष	तीसरे 7 वर्ष
100 रु० प्रतिमास	2 रु० प्रतिमास	396 रु० प्रतिमास

इनसे अधिक पूछताछ करें :
समीपस्थ डाकघर अथवा
राष्ट्रीय बचत आयुक्त, नागपुर

davp 74/192

जनजातीय क्षेत्रों की परियोजनाओं का एक अध्ययन

ए० एन० आचार्य

जनजातीय क्षेत्रों के विकास के लिए भारत सरकार ने सबसे पहले चौथी योजना में 6 प्रायोगिक परियाजनाएं स्वीकृत की थीं। ये परियोजनाएं 1971-72 के अन्त में शुरू की गई थीं और इनकी अवधि पांच साल की थी। प्रत्येक परियोजना पर लगभग 2 करोड़ रुपये की लागत का अनुमान है जिसमें से डेढ़ करोड़ रुपये आर्थिक विकास कार्यक्रम पर और पचास लाख रुपए सड़क-निर्माण पर व्यय किए जाने का प्रस्ताव है। पांचवीं योजना में इसी तरह की दो और प्रायोगिक परियोजनाएं शुरू की गई है। पर, इन नई परियोजनाओं में सड़क निर्माण कार्य नहीं होगा। इस प्रकार इस समय कुल आठ परियोजनाएं चलाई जा रही हैं। पांचवीं योजना मे इनके लिए कुल 11 करोड़ रुपए की राशि निर्धारित की गई है। ये परियोजनाएं चार राज्यों में आठ चुने हुए क्षेत्रों में चलाई जा रही हैं और वे क्षेत्र ये है :—

आन्ध्र प्रदेश में	···	सिरीकाकुलम
बिहार में	···	सिंघभूमि
मध्य प्रदेश में	···	बस्तर (दो
	···	परियोजनाएं)
उड़ीसा में	···	गंजम, कोरापुट क्योंझार और फुलबनी

परियोजनाओं का उद्देश्य इन क्षेत्रों के लोगों को उनकी भूमि की मिलकियत दिलाना, उन्हें खेती के नए तरीकों की जानकारी देना और अधिक उपज लेने में सहायता करना है। साथ ही वहां सिंचाई की उचित सुविधाएं देना, उन्हें सहायक धन्धे मुहैया करना और उनके लिए विपणन की समुचित व्यवस्था करना है ताकि वे आसानी से और सही कीमत पर चीजें खरीद और बेच सकें। उन्हें रोजगारों के उपयोग की वस्तुएं बिना किसी कठिनाई के उपलब्ध हो सकें और खेती के लिए तथा अन्य सामाजिक कार्यों के लिए आसान शर्तों पर ऋण मिल सके। उन्हें हर हालत में साहूकार के चंगुल से निकालना और शोषण से बचाना हैं। असल मतलब तो जनजातीय क्षेत्रों को नया विकासशील रूप देना है।

इन सब उद्देश्यों की पूर्ति के लिए परियोजनाएं इन क्षेत्रों में सहकारी ऋण संस्थाएं चलाती हैं और भूमि रिकार्डों को पुरी तरह ठीक से तैयार करती हैं। इसके अलावा, भूमिहीन परिवारों को भूमि देकर उन्हें झूम खेती के प्रति उत्साहित करती हैं।

पहली छः परियोजनाएं तो लगभग पिछले दो ढाई साल से चल रही हैं। इतनी जल्दी उनकी सफलता-असफलता नहीं अंकी जा सकती। फिर भी 31 जून, 1974 तक इन परियोजनाओं की उपलब्धियों का ब्यौरा नीचे दिया जा रहा है।

सिरीकाकुलम

यह परियोजना 18-1-1972 को पंजीकृत हुई थी। इसके लिए 93 लाख 51 हजार रुपए की राशि दी जा चुकी हैं जिसमें से 75 लाख 88 हजार रुपए खर्च किए जा चुके हैं।

परियोजना में अभी तक कुल मिलाकर काफी प्रगति हुई है और विभिन्न कार्यक्रम बड़े सन्तुलित ढंग से चलाए गए हैं। यहां पर 22,962 आदिवासियों की सूची तैयार की गई है और विभिन्न कार्यक्रमों द्वारा उन सभी को लाभ पहुंचा है। यहां की 21,485 एकड़ भूमि उन्नत कृषि के अन्तर्गत लाई गई है।

यहां पर खेती के विकास मे काफी काम किया गया है। किसानों को हल-बैल और खेती के अन्य उपकरण मुहैया किए गए हैं। लघु सिंचाई की उचित व्यवस्था की गई है। पशुपालन, मुर्गी-पालन, सूअर पालन तथा बकरी पालन का भी विकास किया गया है। परियोजना ने विभिन्न कार्यक्रमों पर 9.64 लाख रुपए की सहायता दी है और

सहकारी संस्थाओं को कार्यशील बनाने के लिए 7·45 लाख रुपए के एडवांस भी दिए हैं।

राज्य विधान सभा में 1974-75 जनजातीय क्षेत्रों के विकास की अनुदान राशि पर बहस करते हुए मुख्यमन्त्री जी ने परियोजना की बड़ी प्रशंसा की है।

सिंधभूमि

यह परियोजना 25.1.1972 को पंजीकृत हुई थी। इसके लिए अभी तक 80 लाख रुपए की धनराशि दी जा चुकी है जिसमें से 69.16 लाख रुपए खर्च किए जा चुके हैं।

परियोजना में शुरू में कुछ परेशानियां और अड़चनें आई थीं पर बाद में स्थिति सुधरती गई। यहां 31,381 आदिवासियों की सूची तैयार की गई है जिसमें से 16,000 को विभिन्न कार्यक्रमों द्वारा लाभ पहुंचा है। यहां पर बागवानी, भूमि सुधार, लघु सिंचाई और पशुपालन के क्षेत्र में बहुत प्रगति हुई है। परियोजना ने लगभग 2,862 एकड़ भूमि पर उन्नत कृषि का विकास किया है। यहां पर खेती की उन्नत तकनीकों को लोकप्रिय बनाने और आदिवासी कृषकों में उनके प्रति अभिरुचि पैदा करने के लिए प्रदर्शनों का आयोजन करना होगा और कुछ अन्य प्रयास करने होंगे।

दान्तेवाड़ा और कोन्टा

ये दोनों परियोजनाएं मध्य प्रदेश के बस्तर जिले में चलाई जा रही हैं। इनका पंजीकरण 14.2.1972 को हुआ था। इन दोनों परियोजनाओं के लिए 55.55 लाख रुपए की राशि दी गई है। अभी तक जनजातीय विकास एजेंसी दान्तेवाड़ा में 39.06 लाख रुपए व्यय किए जा चुके है और कोन्टा की जनजातीय विकास एजेंसी में 38.35 लाख रुपए व्यय किए जा चुके हैं। पहले 17-18 महीने तक कर्मचारियों की कमी होने के कारण परियोजना में काम कुछ ढ़ीला रहा पर बाद में काम में तेजी आ गई। दान्तेवाड़ा परियोजना ने 15,964 आदिवासियों को सदस्य बनाया जबकि कोन्टा परियोजना के अन्तर्गत 10,293 आदिवासी सदस्य बनाए गए। विभिन्न कार्यक्रमों द्वारा अभी तक दान्तेवाड़ा एजेंसी के 4,575 सदस्यों और कोन्टा एजेंसी के 7,275 सदस्यों को लाभ पहुंचा है। कृषि के क्षेत्र में तो भारी सफलता मिली है। दान्तेवाड़ा जिले की 20,563 एकड़ भूमि और कोन्टा जिले की 22,782 एकड़ भूमि आधुनिक कृषि के अन्तर्गत लाई गई है। भारी संख्या में प्रदर्शनों का आयोजन किया गया और इनसे कृषक आधुनिक और उन्नत कृषि उपकरणों का उपयोग करने की ओर आकृष्ट हुए। लघु सिंचाई और पशुपालन की योजनाएं भी काफी सफल रही हैं।

गंजम

यह परियोजना 13.3.72 को पंजीकृत हुई थी और आरम्भ से ही बहुत अच्छा काम कर रही है। इस परियोजना के लिए 2 करोड़ रुपए का प्रावधान था जिसमें से एक करोड़ उनतीस लाख रुपए दिए जा चुके हैं और कुल एक करोड़ नौ लाख रुपए खर्च किए जा चुके हैं। परियोजना की अवधि में कुल 2 करोड़ रुपए की राशि खर्च हो जाएगी, ऐसा अनुमान है।

अभी तक 26,606 आदिवासी सदस्यों की सूची बनाई गई है जिनमें से 23,796 को विभिन्न कार्यक्रमों से लाभ पहुंचा है। यहां कृषि, लघु सिंचाई, भूमि विकास, मुर्गीपालन और सूअर-पालन आदि के क्षेत्रों में महत्वपूर्ण काम हुआ है। 15,991 एकड़ भूमि पर उन्नत खेती की जा रही है। आदिवासी कृषकों में कृषि की उन्नत तकनीकी को लोकप्रिय बनाने के लिए बहुत से प्रदर्शन आयोजित किए गए तथा सहकारी समितियों को सुदृढ़ बनाने के लिए भी सहायता दी गई है।

गंजम की जनजातीय विकास एजेंसी के इतिहास में 22 दिसम्बर, 1973 एक महत्वपूर्ण दिन था। उस दिन प्रधान मन्त्री श्रीमती इन्दिरा गांधी वहां आई थीं और उन्होंने अनेक आदिवासियों को भूमि-पट्टे, कुंए बनाने के लिए खेती का अन्य सामान खरीदने के लिए धन दिया। उन्होंने लोगों से परियोजना के कार्यक्रमों में पूरा-पूरा सहयोग देकर उन्हें सफल बनाने का अनुरोध किया।

कोरापुट

यह परियोजना 13.3.72 को पंजीकृत हुई थी और इसके लिए 1 करोड़ 28 लाख रुपए की राशि दी गई है जिसमें से अभी तक 1 करोड़ 7 लाख 45 हजार रुपए खर्च हुए हैं। यहां अभी तक 19,927 आदिवासियों को परियोजना में शामिल किया है और इन सभी को विभिन्न कार्यक्रमों द्वारा लाभ मिला है। यहां कृषि, बागवानी, हल-बैल वितरण, लघु सिंचाई और पशुपालन के क्षेत्र में बहुत काम हुआ है। अधिक उपज देने वाली किस्मों के बीजों का वितरण किया गया है। कुल 4,455 एकड़ भूमि उन्नत कृषि के अन्तर्गत आ गई है। कुल मिलाकर परियोजना की प्रगति सन्तोषप्रद रही है।

क्योंझार और फुलबनी

वैसे तो ये दोनों परियोजनाएं 1973-74 में ही पंजीकृत हो गई थीं पर इन पर काम शुरू करने की स्वीकृति अभी कुछ समय पहले ही दी गई है। इन परियोजनाओं में आदिवासियों के चुनाव का काम काफी तेजी पर है। क्योंझार परियोजना का उद्घाटन श्रीमती इन्दिरा गांधी ने अक्तूबर, 1973 में किया था। परियोजना के विभिन्न आर्थिक कार्यक्रमों के संचालन के लिए 5 लाख रुपए की राशि दी जा चुकी है।

सड़कें

सभी छः जनजातीय विकास परियोजनाओं में सड़कों के लिए जगह का चुनाव हो चुका है। कुल मिलाकर 415 किलोमीटर लम्बाई की जोड़क सड़कों और 327 किलोमीटर लम्बाई की अन्य छोटी सड़कों पर कार्य चल रहा है। ये

सड़कें पक्की बनाई जाएंगी और सभी मौसमों में यहां मोटर-गाड़ियां चलेंगी।

कठिनाइयां

(i) परियोजनाओं में पर्याप्त संख्या में अधिकारी और अन्य कर्मचारी न होने से काम में पूरी तेजी नहीं आ पाती। प्रशासनिक और तकनीकी दोनों ही नियुक्तियां सम्बन्धित राज्य सरकारों द्वारा की जाती हैं तथा बीच-बीच में तबादले भी होते हैं। इससे काम का हर्जा होता है। इसके लिए आवश्यक है कि महत्वपूर्ण अधिकारियों का तबादला काम के बीच में न हो और वैसे भी पर्याप्त कर्मचारी उपलब्ध किए जाएं।

(ii) जनजातीय क्षेत्रों में रहने के लिए उचित व्यवस्था नहीं होती तथा शिक्षा सुविधाएं और अस्पताल वगैरह की भी कमी होती है। इन कारणों से यहां भेजे जाने वाले कर्मचारी या तो देर से आते हैं और टालमटोल करते रहते हैं या फिर आने के बाद जल्दी ही यहां से दूसरी जगह भाग जाना चाहते हैं। उन्हें यहां जमकर काम करने के लिए उत्साहित करने के लिए आवश्यक है कि ये सुविधाएं शीघ्रातिशीघ्र उपलब्ध कराई जाएं।

(iii) इन परियोजनाओं की यह भी शिकायत है कि पैसे की कमी पड़ जाती है। हालांकि इस बात की ओर से काफी सतर्कता बरती जाती है कि पैसे की कमी न होने पाए तो भी हालात के कारण कई बार ऐसा हो ही जाता है। साथ ही लगातार बढ़ती हुई कीमतों को देखते हुए परियोजनाओं के लिए रखी गई राशि पर दुबारा ध्यान देना चाहिए और उसे आवश्यकतानुसार बढ़ाना चाहिए।

अध्ययन दल

इस सन्दर्भ में तीन अध्ययन दलों ने जनजातीय क्षेत्र परियोजनाओं के लिए जो महत्वपूर्ण सिफारिशें की हैं उन पर भी ध्यान देना चाहिए। ये तीन अध्ययन दल इस प्रकार थे :--

1. जनजातीय विकास परियोजनाओं के सरकारी ढांचे के संयुक्त सचिव श्री के. एस. बावा की अध्यक्षता में गठित दल।

2. जनजातीय विकास परियोजनाओं में ऋणग्रस्तता दूर करने, और भूमि सम्बन्धी विवाद मिटाने वाले विभाग के संयुक्त सचिव श्री पी. एस. अप्पू की अध्यक्षता वाला दल।

3. जनजातीय विकास परियोजनाओं में **बेंच मार्क सर्वे** के संयुक्त सचिव श्री एम. के. मुखर्जी की अध्यक्षता वाला दल।

पहले दल ने सिफारिश की है कि तुरन्त ही सहकारी समितियों का पुनर्गठन किया जाए और उनका पुनरुद्धार किया जाए ताकि जनजातीय विकास कार्यक्रमों के लिए ऋण उपलब्ध किए जा सकें। ये सिफारिशें सम्बन्धित विभागों तक पहुंचाई जा चुकी है और परियोजनाओं में सहकारी समितियों के पुनर्गठन का तथा उन्हें सशक्त बनाने का काम शुरू हो चुका है।

दूसरे दल ने सिफारिश की है कि ऋणों से मुक्ति दिलाने के लिए विशेष अदालतें स्थापित की जाएं ताकि आदिवासी ऋणों के चंगुल से निकल सकें। उन्हें ऋण अदा करने के लिए आर्थिक सहायता देने और भविष्य में उन्हें कर्जदार होने से बचाने के लिए सहकारी संस्थाएं खोलने की भी सिफारिश की गई है। आदिवासियों को उनकी भूमि पर सम्पूर्ण अधिकार दिलाने और इस सम्बन्ध में नाजायज वाद-विवाद समाप्त करने में उनकी सहायता करने की भी सिफारिश की गई है। ये सिफारिशें भी सम्बन्धित विभागों तक पहुचा दी गई हैं तथा परियोजनाओं पर ऋणग्रस्तता सम्बन्धी सर्वेक्षण शुरू किए जा चुके हैं।

तीसरे दल की सिफारिश है कि जनजातीय क्षेत्रों के विकास के लिए विभिन्न क्षेत्रों में आधार स्तर तय किए जाएं। यह सिफारिश भी सम्बन्धित विभागो तक पहुंच चुकी है और सभी जनजातीय परियोजनाओं में सर्वेक्षण हो चुके हैं।

परियोजनाओं ने जिला स्तर पर एक वार्षिक सम्मेलन का आयोजन किया था। इसमें आर्थिक विकास की समस्याओं की चर्चा की गई। सहायता चाहने वाले उपयुक्त आदिवासियों का चुनाव करने के सवाल पर भी बहस हुई। साथ ही विकास की गति तेज करने के लिए उपाय सुझाए गए।

□

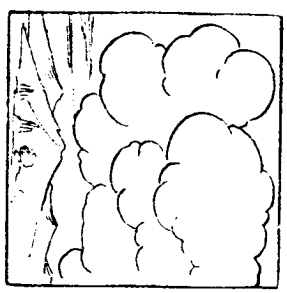

समस्याओं के जाल में फंसी ये जन-जातियां

परिपूर्णानन्द पैन्यूली

राष्ट्रपिता महात्मा गान्धी प्रायः कहा करते थे कि हमारे विकास कार्यक्रम की मुख्य कसौटी यह होनी चाहिए कि समाज की सबसे निचली सीढ़ी पर जो वर्ग हैं, उनके उत्थान की ओर कितना ध्यान दिया जाता है। उन्होंने 'अन्त्योदय' की जो बात कही उसका अर्थ ही यह था कि पंक्ति में जो व्यक्ति सबसे अन्त में खड़ा है उसके हृदय का सबसे पहले ध्यान होना चाहिए। कहना न होगा कि हमारे देश में हरिजन, गिरिजन और जन-जाति के लोग समाज की सबसे नीचे की सीढ़ी में हैं, इसलिए महात्मा जी ने उनके उत्थान की ओर सर्वाधिक ध्यान दिया।

इतिहास साक्षी है कि गैर जन-जातियों के पदार्पण से पूर्व इस देश के मूल निवासी यहां की आदिम जातियां थीं। हिमालय की उपत्यकाओं से लेकर सुदूर दक्षिण तक यह आदिम जातियां देश भर में फैली थी और स्वतन्त्र थीं। आर्यों के भारत वर्ष में प्रवेश करने पर इन आदिम जातियों को जंगलों और पहाड़ों में भागना पड़ा। तथाकथित आधुनिक सभ्यता से दूर वे आज भी पर्वतों और वनों में कष्टसाध्य जीवन बिताकर अपनी प्राचीनतम सभ्यता और संस्कृति की रक्षा कर रहे हैं।

जनजाति के लोगों ने बाहरी हमलों का संगठित रूप से उस समय मुकाबला किया जब अंग्रेजों ने भारत पर आधिपत्य करने के पश्चात् आदिम जातियों को भी अपने सीधे नियन्त्रण में करने का प्रयत्न किया। विदेशी शासकों ने शान्ति और व्यवस्था के नाम पर आदिवासियों पर दमनचक्र शुरू किया। 1872 का मान पहाड़ियां की जन-जातियों का आन्दोलन, 1831 का सिंह-भूमि विद्रोह, 1846 का खांड विप्लव और 1855 का ब्रिटिश शासन के विरुद्ध सन्थाल जन-जाति का सशस्त्र संघर्ष इसके प्रमाण हैं। अंग्रेजों ने असम और नागालैण्ड में 1774 में और जैंतिया पहाड़ियों में 1850 व 1890 में सैनिक टुकड़ियां भेजकर वहां की जन-जातियों को कुचलने का असफल प्रयास किया। विद्रोही नागाओं को दबाने के लिए 1878 में और अबोरवासियों को कुचलने के लिए 1942 में सशस्त्र सेना भेजी गई किन्तु उन्हें विशेष सफलता नहीं मिली। अन्त में अंग्रेजों को अपनी नीति में परिवर्तन करना पड़ा, आदिम जाति बहुसंख्यक ऐसे विशेष क्षेत्र घोषित किए गए जिन्हें शेष भारत से अलग-थलग अप्रत्यक्ष रूप से अपने संरक्षण में रखा। 1874 के एक कानून द्वारा कुछ आदिवासी इलाके "अनुसूचित क्षेत्र" घोषित किए गए। 1919 और 1935 के कानूनों द्वारा इस दिशा में और अधिक सुधार किया गया। चूंकि अंग्रेजों ने भारत की आदिम-जातियों को अपने औपनिवेशिक स्वार्थों की पूर्ति के लिए विशेष लाभदायक नहीं समझा, इसलिए उन्होंने उनके उत्थान की ओर कोई ध्यान नहीं दिया और आदिम जातियों को शिक्षा, व विकास की समस्त सुविधाओं से वञ्चित रखकर सीधे गवर्नर के आधीन उन्हें 'कुएं का मेंढक' बना कर रखा।

चूंकि ब्रिटिश शासन काल में आदिवासी क्षेत्रों में किसी प्रकार की राजनैतिक गतिविधियों को स्थान नहीं दिया गया, इसलिए हमारे स्वातन्त्र्य संग्राम के दिनों में उन क्षेत्रों में प्रायः राजनैतिक चेतना का अभाव रहा। अधिकांश आदिवासी क्षेत्रों का अस्तित्व देशी रियासतों के रूप में था, जिन पर राजाओं का निरंकुश शासन था। भोले-भाले और अशिक्षित आदिवासी भ्रष्ट सामन्ती कुशासन के विरुद्ध आवाज उठाने का साहस कैसे करते।

स्वतन्त्र भारत के संविधान में पहली बार यह व्यवस्था की गई कि जन-जाति के लोगों का इस प्रकार विकास किया जाए कि जिससे आने वाले समय में वे देश के अन्य भागों के समान उन्नति कर सकें और राष्ट्र निर्माण के काम में एकजुट होकर अपना योगदान कर मूल धारा में सम्मिलित हो सकें। भारतवर्ष को छोड़कर सम्भवतः विश्व के किसी भी लोकतन्त्रात्मक गण-राज्य में जन-जातियों और हरिजनों को संवैधानिक संरक्षण नहीं प्राप्त हुआ है। संविधान द्वारा उन्हें शिक्षा व आर्थिक विकास के क्षेत्र में विशेष सुविधाएं प्रदान की गई। संसद् और विधान सभाओं में, तथा राजकीय सेवाओं में, जन-जातियों के लिए स्थान सुरक्षित रखने के साथ-साथ उनके आर्थिक व सामाजिक विकास हेतु जो प्रभावशाली कदम उठाए गए, उनका अच्छा परिणाम निकला है। गत 24 वर्षों में जन-जाति के लोगों में नव-चेतना का संचार हुआ है और वे अनुभव करने लगे हैं कि देश की प्रगति और उसके अभ्युदय में उन्हें महत्वपूर्ण भूमिका निभानी है।

स्वतन्त्र भारत का संविधान बनने के एक वर्ष बाद, 1951 में केन्द्रीय सरकार ने जन-जातियों के उत्थान हेतु जन-जाति निदेशालय की स्थापना की और उसके तत्काल बाद ही अनुसूचित जाति एवं अनुसूचित जन-जाति आयुक्त की नियुक्ति हुई। पिछले कुछ वर्षों में जन-जातियों के आर्थिक विकास हेतु एक

सघन कार्यक्रम अपनाया गया जो आदिवासी विकास खण्ड और जन-जाति विकास खण्ड का मिलाजुला रूप है। इस योजना के अन्तर्गत मुख्यतः उन आदिवासी क्षेत्रों को सम्मिलित किया है जो अपेक्षाकृत अविकसित रहे हैं। चौथी पंचवर्षीय योजना के अन्त तक देश के विभिन्न भागों में 504 जन-जाति विकास खण्ड खोले गए। पंचम पंचवर्षीय योजना काल के प्रथम वर्ष में जन-जातियों के सघन विकास हेतु 10 करोड़ रुपए का प्रावधान किया गया है।

यह सब कुछ होने के बावजूद स्थिति यह है कि संविधान द्वारा जन-जातियों को संरक्षण देने और उनकी उन्नति के लिए स्पष्ट व्यवस्था करने के बावजूद उनकी स्थिति में वांछनीय परिवर्तन नहीं हो पाया है। सरकारी आंकड़ों के अनुसार 1950 से 1969 के बीच जन-जातियों के विकास के नाम पर पौने चार अरब रुपया व्यय किया गया जो अपर्याप्त था। किन्तु उससे भी जन-जातियों को प्रत्यक्ष लाभ बहुत कम हुआ। प्रथम पंचवर्षीय योजना काल में देश के कुल बजट का केवल एक प्रतिशत भाग जन-जाति कल्याण के लिए निर्धारित किया गया था, जिसे दूसरी, तीसरी और चौथी योजना की अवधि में निरन्तर कम किया जाता रहा। आंकड़े सिद्ध करते हैं कि द्वितीय पंचवर्षीय योजना काल में कुल बजट का केवल 0.9 प्रतिशत, तीसरी पंचवर्षीय योजना में 0.5 प्रतिशत, और चौथी योजना में 0.04 प्रतिशत धनराशि का प्रावधान जन-जातियों के विकास के लिए किया गया।

इन योजनाओं के अन्तर्गत केन्द्र तथा प्रदेश सरकारों के काम-काज की प्रगति का मूल्याङ्कन करने के लिए जिन विशेष कमेटियों का समय-समय पर गठन किया गया, उनमें अलविन कमेटी, रेणुका राय कमेटी और शीलू आओ कमेटी ने इस

बात पर चिन्ता व्यक्त की कि विभिन्न परियोजनाओं के नाम पर समय-समय पर जो धनराशि व्यय की गई उससे वांछनीय लाभ नहीं पहुंचा है। अनुसूचित जाति और अनुसूचित जन-जाति आयुक्त ने प्रत्येक वर्ष अपनी रिपोर्टों में परम्परागत रूप से इस बात पर चिन्ता व्यक्त की कि जन-जातियों के उत्थान की दिशा में असन्तोषजनक काम हुआ है।

अनुसूचित जाति और अनुसूचित जन-जाति आयुक्त की 1970-71 की वार्षिक रिपोर्ट में यह स्पष्ट चेतावनी दी गई है कि जनजाति के लोगों के मन में असुरक्षा और आर्थिक बेबसी की भावना जड़ जमा रही है। करोड़ों लोगों के दिलों में इस प्रकार की भावना से हमारी राष्ट्रीय एकता की भावना की जड़ों पर कुठाराघात होगा जो जनतन्त्र को भी खतरे में डाल सकती है।" आयुक्त ने 1971-72 और 1972-73 की 21वीं रिपोर्ट में, जो हाल ही में प्रकाशित हुई है, इस बात को स्वीकार किया है कि "अधिकांश जन-जातियां न केवल उपेक्षित हैं, वरन् उनका पूर्ववत् शोषण हो रहा है"। यह बात उल्लेखनीय है कि पंचम पंचवर्षीय योजना काल में योजना आयोग ने जन-जातियों के उत्थान के लिए एक नई ब्यूह रचना की जोरदार सिफारिश की है और इसके साथ ही नए लक्ष्यों पर आधारित कार्यक्रम को मूर्तरूप देने के लिए जन-जाति क्षेत्रों के प्रशासकीय ढांचे में आमूलचूल परिवर्तन करने पर विशेष बल दिया है।

1971 की जनगणना के अनुसार हमारे देश में जन-जाति के लोगों की संख्या 3,82,00,000 से कुछ अधिक है। इनमें सबसे अधिक जनसंख्या उत्तर पूर्व और मध्यभारत में है। इनके अलावा, देश के कई अन्य भागों में जन-जाति के लोग अनेक समूहों में यत्र-तत्र बिखरे पड़े हैं। अशिक्षित, गरीब और साधनहीन होते हुए भी आदिवासी लोग अनुशासन प्रिय, और समृद्ध लोक संस्कृति, आतिथ्य सत्कार, सामाजिक एकता और त्याग व बलिदान की भावना से परिपूर्ण हैं। वे असंगठित हैं जिससे स्वतन्त्रता प्राप्ति के 27 वर्ष बाद भी उनका गैर जन-जाति के लोगों द्वारा शोषण होता रहा है। जिन जंगलों पर पहले उनका आधिपत्य था, शासन द्वारा उन पर प्रतिबन्ध लगाए जाने से और ठेकेदारों द्वारा उन वनों का निर्ममता पूर्वक विदोहन किए जाने से जन जातियां विपन्न होती जा रही हैं। मैदानों में रहने वाले व्यवसायी और धन्ना सेठ उनके हरे भरे उपजाऊ खेतों को हथियाते जाते हैं जिससे आदिवासी दिन-प्रतिदिन ऋण ग्रस्त हो रहे हैं। सरकारी ऋण के अतिरिक्त महाजन, ठेकेदार और शहरों में रहने वाले व्यवसायी ब्याज की ऊंची दरों पर उन्हें ऋण देकर उन्हें लूटते रहते हैं। जन-जातियों के ऋण ग्रस्तता सम्बन्धी एक अध्ययन से पता चलता है कि 17% से 19% तक लोग ऋण ग्रस्त हैं। वे प्रायः कृषि विकास के लिए ऋण न लेकर त्योहारों तथा विवाह व अन्य समारोहों के लिए ऋण लेने के आदि हैं। ऋण ग्रस्तता जन-जातियों के लिए आज सबसे बड़ा अभिशाप सिद्ध हो रही है। ऋण ग्रस्त परिवार अपनी आजीविका के साधनों से हाथ धोने के पश्चात् रोटी रोजी की

तलाश में इधर-उधर मारे-मारे फिरते हैं। समाज विरोधी तत्व, जिनका सूद खोरों के साथ सीधा सम्बन्ध होता है, भोली-भाली आदिवासी लड़कियों को फुसलाकर उनका अनैतिक व्यापार करने में भी संकोच नहीं करता है। मई 1972 में लोक सभा में उड़ीसा की आदिवासी लड़कियों के कुत्सित व्यापार की कड़ी भर्त्सना की गई थी। उस क्षेत्र के संसद् सदस्यों ने जब सदन को यह बताया कि पांच माह के भीतर दो हजार लड़कियां वेश्यालयों व अन्य व्यक्तियों के हाथ बेची गईं तो इससे बड़ी उत्तेजना फैली। इस घटना से पूर्व आदिवासियों द्वारा बस्तर में किए गए विद्रोह, आन्ध्र में गिरिजनों द्वारा छेड़े गए आदिवासी आन्दोलन तथा पुलपल्ली में कथित नक्सलपन्थी सशस्त्र विद्रोह की घटनाएं आज भी ताजा हैं।

भारत सरकार की राजधानी दिल्ली की जी०बी० रोड़ पर दर्जनों ऐसे कुख्यात घर हैं जहां उत्तर प्रदेश के जौनसार बाबर, और जौनपुर रवाई की आदिवासी कोल्टा लड़कियों को वेश्यावृत्ति के लिए रखा जाता है। एक सर्वेक्षण के अनुसार रवाई क्षेत्र में आदिवासी कोल्टा लड़कियों का अनैतिक व्यापार करने में 125 स्थानीय एजेण्ट कार्यरत हैं। पुराणा ऋण चुकाने और पेट की आग शान्त करने के लिए उन्हें अपनी बेटी का शील बेचने को बाध्य होना पड़ता है। उस क्षेत्र में जीविका के सारे साधन सम्पन्न वर्ग के हाथ में हैं। भले ही 1956 के वेश्यावृत्ति अपराध निरोधक कानून द्वारा इस अनैतिक कार्य को बन्द कर दिया गया हो किन्तु पिछले 18 वर्षों में स्त्रियों के, विशेषकर आदिवासी लड़कियों के, अनैतिक व्यापार में निरन्तर वृद्धि हुई है।

जन-जाति क्षेत्र के ऋण-ग्रस्त लोगों को सूदखोर महाजनों से मुक्ति दिलाने, आदिवासी लड़कियों के अनैतिक व्यापार को रोकने, और साहूकारों और जमींदारों द्वारा उनकी भूमि हड़पने से रोकने के काम में कानून व शासन से अधिक महत्वपूर्ण योगदान स्वयं सेवी संस्थाएं कर सकती हैं क्योंकि उनका मुख्य उद्देश्य जनमानस को बदलना होता है। उत्तर प्रदेश के पर्वतीय क्षेत्रों में वनसम्पदा नष्ट होने से बचाने के लिए सर्वोदय कार्यकर्त्ताओं ने जो 'चिपको' आन्दोलन छेड़ा, तथा रवाई क्षेत्र में भूमिहीन कोल्टा वर्ग को राहत दिलाने और उन्हें अपने पैरों पर खड़ा करने की दिशा में जो सराहनीय कार्य किया है, उससे आदिवासी लोगों को मनोबल बढ़ा है। महाराष्ट्र स्थित धूलिया जिले के आदिवासियों की भूमि धनवान जमींदारों द्वारा हड़पने के विरुद्ध सर्वोदय के कार्यकर्त्ताओं और आदिवासी सेवा मण्डल ने तीन वर्ष पूर्व जो आन्दोलन छेड़ा था उसका बहुत प्रभावशाली प्रभाव पड़ा। ग्राम स्वराज्य समितियों के माध्यम से इन सामाजिक कार्यकर्त्ताओं ने आदिवासियों को शोषक जमींदारों के चंगुल से मुक्त कराकर महत्वपूर्ण भूमिका अदा की है।

संसद् सदस्य

नई दिल्ली

□

इण्डो-जर्मन परियोजना

* सो० डी० चोकलिंगम

तमिलनाडु राज्य में नीलगिरि पर्वत पर बसा नीलगिरि जिला राज्य के अन्य जिलों से काफी अलग-थलग है। यहां की जलवायु तो भिन्न है ही, यहां की भौगोलिक स्थिति, यहां अपनाए जाने वाले कृषि के तौर तरीके, यहां के लोगों का रहन-सहन और संस्कृति भी काफी भिन्न हैं। पूरा जिला पहाड़ी क्षेत्र है और इसमें चार सामुदायिक विकास खण्ड हैं—उटाकमाण्ड, कोटागिरि, कुन्नूर और गुडालुर। इनमें से उटाकमाण्ड और कोटागिरि खण्ड तो काफी ऊंचाई पर स्थित हैं और इनकी ऊंचाई क्रमशः 1,500 और 2,500 मीटर है। गुडालुर खण्ड जिले के पश्चिमी भाग में है और इसकी ऊंचाई 1,000 मीटर है। इस खण्ड का एक भाग मैसूर के पठार में लगता है।

जिले में दो बार मानसून आता है तथा यहां वर्ष में 500 मिलीमीटर से 6,000 मिलीमीटर तक वर्षा होती है। वर्षा के औसत में इतना अन्तर क्षेत्र-विशेष की ऊंचाई और बनावट के कारण है। जून से अगस्त तक दक्षिण-पश्चिमी मानसून आता है जिससे जिले के पश्चिमी भाग में वर्षा होती है जबकि अक्तूबर से दिसम्बर तक उत्तरी-पूर्वी मानसून आता है जिससे जिले के पूर्वी भाग में वर्षा होती है। नीलगिरि जिले का क्षेत्रफल 2,550 वर्ग किलोमीटर है और यहां लगभग 5 लाख की आबादी है और 15,000 कृषि जोतें हैं।

खेती के जो तरीके नीलगिरि में अपनाए जाते हैं और जो फसलें वहां उगाई जाती हैं वे मैदानों में की जाने वाली खेती से बिल्कुल भिन्न हैं। यहां ज्यादातर फसलें वर्षा पर आधारित हैं। हां, कुछ क्षेत्रों में आलू और कुछेक सब्जियों की फसलों के लिए सिंचाई की जाती है। यहां की मुख्य फसल आलू ही है। इसके अलावा, कई पहाड़ी सब्जियां —गोभी, चुकन्दर, गाजर, मूली, जौ, समाइ, रागी आदि अन्न तथा धान टेपियोका और अदरक आदि की खेती की जाती है। कुछ अधिक ऊंचाई पर जलवायु, मिट्टी तथा आर्थिक परिस्थितियां आलू की फसल के लिए बहुत ज्यादा उपयुक्त होने के कारण इन क्षेत्रों में केवल आलू ही बोया जाता है। 1960 के दशक में तो यहां की अर्थव्यवस्था को भारी धक्का लगा था। उस दौरान सुनहरी निमेटोड़ नामक आलू के कीड़े से आलू की फसल को बहुत भारी क्षति पहुंची थी।

परियोजना

जनवरी 1967 में इण्डो-जर्मन नीलगिरि विकास परियोजना शुरू की गई थी। इसका उद्देश्य कृषि उत्पादन में वृद्धि करना था। इस परियोजना में जिन प्रमुख समस्याओं को हल करने का लक्ष्य रखा गया था वे इस प्रकार हैं :—

(क) सुनहरी निमेटोड का नियन्त्रण;

(ख) आलू की ऐसी अधिक उपज देने वाली फसलों का विकास करना जो निमेटोड़ और लेट ब्लाइट आदि कीड़ों से सुरक्षित रह सकें तथा साथ ही वायरस-मुक्त आलू का विकास करना;

(ग) खाद्यान्न, सब्जियों और चारे की अधिक उपज देने वाली फसलों का विकास करना ताकि विभिन्न फसलों का उत्पादन सम्भव हो सके ;

(घ) उत्पादन के लिए आदानों, खाद बीज तथा ऋण आदि की समय पर उचित व्यवस्था करना।

(ङ) कृषि उपज, विशेषकर सब्जियों के विपणन की व्यवस्था करना; तथा

(च) सघन प्रचार करके किसानों में उन्नत तरीके अपनाने के प्रति अभिरुचि पैदा करना।

नीलगिरि की परिस्थितियां ही कुछ ऐसी हैं कि वहां निमेटोड़ कीट का नियन्त्रण केवल रासायनिक ढंग से किया जा सकता है। कई एक प्रयोग करने पर यह तथ्य सामने आया कि 'दसानिट' रसायन के 10% चूरे से काफी प्रभावशाली ढंग से रोकथाम हो जाती है। अतः वैज्ञानिकों और विशेषज्ञों ने किसानों से यही इस्तेमाल करने की सिफारिश की। पिछले चार साल से यह तरीका सफलतापूर्वक काम में लाया जा रहा है। प्रतिवर्ष 790 किसानों को लाभ पहुंचाया गया है और पहले वर्ष 3,050 एकड़, दूसरे वर्ष 3,500एकड़ तथा चौथे वर्ष 3,067 एकड़ भूमि पर इस रसायन का प्रयोग किया गया। इस कार्यक्रम पर लगभग डेढ करोड़ रुपए लगाए गए और प्रत्येक किसान को लगभग 2,000 रुपए प्रति एकड़ का लाभ हुआ। निमेटोड़ कीट के नियन्त्रण के लिए पूरे संसार में इतना सघन कार्यक्रम कहीं नहीं चलाया गया है।

इस इलाके में आलू की दो किस्में प्रचलित थीं—ग्रेट-स्काट' तथा 'रेड-आईड-प्रेजिडैन्ट'। बाद में विभिन्न देशों से 131 किस्मों के बीज मंगाए गए और उनका खेतों में परीक्षण किया गया। इन परीक्षणों के आधार पर 4 नई किस्में उपयुक्त पाई गईं। वे— मैरिस पीर, कोजाइम, कुफ्रीमुत्तु और मुल्टा। इन सभी किस्मों के बीज किसानों को उपलब्ध कराने के लिए बीजों के गुणन और उत्पादन का एक कार्यक्रम बनाया गया था जो ठीक से चल रहा है। इस कार्यक्रम में आलू को वायरस से मुक्त करने के लिए स्क्रीनिंग (छानना) की जाती है। इस प्रकार शोधित होने के बाद जो बीज तैयार होता है वह बहुत अच्छी किस्म का होता है। 1972 में 4,178 क्विण्टल और 1974 में 2,267 क्विण्टल बीज का उत्पादन और वितरण किया गया।

इस जिले के कुछ भागों में माल्ट जौ की फसल भी सफलतापूर्वक ली जाती है। अगर इस जौ के उत्पादन के साथ-साथ माल्ट उत्पादन पर आधारित एक उद्योग शुरू किया जाए तो सम्भव है कि 1975 तक छः-सात हजार एकड़ भूमि जौ की फसल के अन्तर्गत आ जाएगी। यहां माल्ट उद्योग सफलतापूर्वक चलाया जा सकता है। कृषि उद्योग आयोग तथा दो अन्य प्राईवेट कम्पनियों ने यहां ऐसी फैक्टरी खोलने की इच्छा व्यक्त की है। इस बात को देखते हुए 1972 में स्थानीय जौ की किस्म के गुणन का कार्यक्रम शुरू किया गया। यह कार्यक्रम परियोजना के परीक्षण खेतों और किसानों द्वारा निजी रूप से अपनाया गया। 1973 की खरीफ के मौसम से जौ की एक नई किस्म 'ब्रीविया' का गुणन किया जा रहा है। इस किस्म से प्रति एकड़ 600 किलोग्राम तक उत्पादन मिलता है जबकि पहले कुल प्रति एकड़ 400 किलोग्राम मिलता था। इसके अलावा, जर्मनी से आई माल्ट-टेस्ट की रिपोर्ट के अनुसार बढ़िया माल्ट के उत्पादन के लिए भी जौ की यह नई किस्म 'ब्रीविया' सबसे ज्यादा उपयुक्त है। यह किस्म 125 से 130 दिनों में तैयार हो जाती है। अतः यह नीलगिरि में फसल-चक्र के लिए भी सर्वथा उपयुक्त है। यही वजह है कि स्थानीय किस्म के स्थान पर इसी किस्म के बीज वितरित किए गए है।

गुडालुर खण्ड में धान की 20 किस्मों पर परीक्षण किया गया और बाद में निम्नलिखित किस्में उपयुक्त पाई गई :—

(i) सभी मौसमों के लिए—आई० आर० 20

(ii) धान के मुख्य मौसम के लिए —एच 4

(iii) गर्मियों के लिए- अवस्थी, रोहिणी और त्रिवेणी।

परियोजना शुरू होने से पहले यहां धान का प्रति एकड़ उत्पादन 700 से 900 किलोग्राम था और अब आई० आर० 20 किस्म के प्रति एकड़ 1,500 से 1,800 किलोग्राम हो गया है। इस खण्ड में अदरक और टेपिओका के विकास पर भी ध्यान दिया जा रहा है। टेपिओका की एच-97 और एच-165 किस्में यहां के लिए चुनी गई हैं।

परियोजना शुरू होने से पहले यहां चारे का पर्याप्त उत्पादन नहीं होता था। पशु सड़क के किनारे घास में, बाढ़ों में और ग्राम के चरागाह वगैरह में मुंह मारते फिरते थे। विशेषकर दिसम्बर से मार्च के महीनों में तो चारे की बहुत तंगी होती थी जिससे दुग्ध-उत्पादन में भी कमी आ जाती थी। इस समस्या को हल करने के उद्देश्य से परियोजना ने चारे की बहुत सी किस्मों का विकास किया है जिन्हें अगस्त-दिसम्बर वाले दूसरे मौसम में छतों पर बोया जा सकता है। परीक्षण से चारे की ये फसलें उपयुक्त पाई गई हैं :—

ओट्स "केण्ट" और बेरिनोवा, चारा गोभी—"ग्रेनेर आजेलाइट्स", चारा चुकन्दर—हाफमैनेस वैस, चारा गाजर "सिलेठा"।

चारा गोभी और चारा चुकन्दर का उत्पादन 40 मीटरिक टन प्रति एकड़ तक हुआ है। चारा गोभी खेत में मार्च तक चलती है जबकि चारा चुकन्दर गोदामों में 3 महीने तक सुरक्षित रखा जा सकता है।

300 एकड़ भूमि में पर्वतीय सब्जियां उगाई जाती हैं। इनमें मेहनत तो अधिक लगती है पर इनसे आमदनी भी खूब होती है। सबसे बड़ी बात तो यह है कि ये सब्जियां आलू बगैरह के फसल-चक्र में बीच-बीच में उगाई जा सकती है। परियोजना में जगह-जगह से मंगाए हुए विभिन्न पर्वतीय सब्जियों के 324 सैम्पल लेकर उनका प्रयोग किया गया। दुनिया भर से ली गई इन किस्मों में से यहां की परिस्थितियों के लिए निम्नलिखित ही किस्म और उत्पादन क्षमता के लिहाज से उपयुक्त पाई गई हैं :—गोभी—सितम्बर, कालीफ्लावर—किबोजाइंट, लाल गोभी—फ्रुस्का, ब्रसल्स स्प्राउट—जेड क्रास, बुशफलियां—वेटक्स, मटर—ग्लोरिसा, पोल फलियां—रेकोर्ड, गाजर—

रोट्स नीकाल्म, मूनी—जस्ता।

इनके पौधों का गुणन किया गया है और उन्हें किसानों में बांटा गया है। स्ट्राबैरी की नई किस्में भी चुनी गई हैं। अभी तक इसकी फसल के अन्तर्गत कुल 15 एकड़ भूमि ही आ पाई है।

परियोजना शुरू होने से पहले कृषि अनुसन्धान स्टेशन, नंजनाड़ में विकसित 'नंजनाड़ मिक्श्चर' उर्वरक प्रयोग में लाया जाता था। यह सभी क्षेत्रों में इस्तेमाल किया जाता था और इसमें कोई विशेषता नहीं थी। परियोजना की मिट्टी परीक्षण प्रयोगशाला में कई परीक्षणों के बाद विभिन्न स्थानों के लिए चार अलग-अलग किस्म के उर्वरकों का विकास किया गया। इसके अलावा भी कुछ अन्य उर्वरकों पर अध्ययन जारी है। मैग्नीशियम वाले दो उर्वरक भी विकसित किए गए हैं जो मैग्नीशियम की कमी वाली मिट्टी में उपयोगी होंगे। इस प्रयोगशाला में पूरे तमिलनाडु राज्य से एकत्रित किए गए मिट्टी के नमूनों का परीक्षण किया जाता है। यहां एक साल में 5,000 नमूनों का परीक्षण किया जा सकता है। इन परीक्षणों के आधार पर भूमि की उर्वरता का एक नक्शा तैयार किया गया है जिसमें विभिन्न स्थलों की भूमि की उर्वरता का पता चलता है। इस प्रयोगशाला में 7 लाख रु० की लागत के उपकरण हैं।

लघुकृषकों को ऋण

परियोजना ने कृषकों का सर्वेक्षण करके पता लगाया कि बहुत से किसान विभिन्न संस्थाओं से लिए गए ऋण वापिस नहीं दे सके हैं। इसके कई कारण हैं जिनमें मौसम की अनियमितता और फसलों का मारा जाना भी शामिल हैं। ऐसे किसानों की आर्थिक दशा सुधारने के उद्देश्य से एक लघु कृषक ऋण योजना शुरू की गई जिसके लिए जर्मन सरकार ने 11 लाख रु० की राशि दी है। इस योजना में 5 एकड से कम जोत वाले छोटे किसानों को उन्नत बीज, खाद और अन्य सामान आदि खरीदने के लिए ऋण दिए जाते हैं। ऋण व्यक्तिगत जमानत पर दिए जाते हैं। 10,000 रु० तक दिए जाने वाले ये ऋण भूमि मालिकों और बटाईदारों—दोनों को दिए जाते हैं। ऐसे लोग, जो सरकारी संस्थाओं, या सहकारी समितियों से लिए गए ऋणों का भुगतान नहीं कर सके हैं, पर जिन्होंने ऐसा वास्तव में जानबूझ कर नहीं किया है, भी ऋण ले सकते हैं। यह योजना अपने किस्म की नई योजना है और ऐसी सरल योजना देश भर में और कहीं भी नहीं चलाई जा रही है। कोई ब्याज नहीं लिया जाता, केवल 2 प्रतिशत सर्विस-चार्ज लिया जाता है।

उप कृषि अधिकारी, ग्राम सेवकों और अन्य क्षेत्रीय अधिकारियों को प्रशिक्षण दिया जा रहा है और उन्हें विभिन्न प्रसार कार्यों के लिए नियुक्त किया जाएगा। आलू आदि सभी फसलों के बारे में आवश्यक जानकारी प्रकाशित करवा के बांट दी गई है और इनमें हर साल आवश्यक संशोधन कर दिए जाते हैं।

परियोजना के कार्यों की सराहना रेडियो और अखबारों में भी की जाती है। यहां एक छोटा थियेटर, एक प्रोजेक्टर और एक स्लाइड-प्रोजेक्टर भी है। सप्ताह में दो बार यहां कृषि सम्बन्धी फिल्में दिखाई जाती हैं। इसके अलावा, हर खण्ड में ग्राम स्तर की मासिक बैठक होती है। इस बैठक में किसानों को परियोजना की गतिविधियों से अवगत कराया जाता है। उनके सुझावों को सुना जाता है तथा तदनुसार निर्णय भी लिए जाते हैं।

जन-जाति विकास की परियोजनाएं

□ शशि प्रभा चावला

प्रसिद्ध वैज्ञानिक डा० बी० एस० गुहा का कथन है कि जिन जन-जातियों की कल्याण योजनाओं की सफलता के लिए मुख्य रूप से दो शर्तें हैं। पहली है जिन व्यक्तियों के लिए वे बनाई गई हैं उनके सामाजिक मूल्यों एवं जीवन के प्रतिमानों के अनुकूल हों। दूसरी है मनोवैज्ञानिक रूप से उनके द्वारा उनकी स्वीकृति तथा ग्रहण करने की क्षमता। वस्तुतः योजना की सैद्धान्तिक पूर्णता या जनसाधारण के लिए इसका औचित्य जन-जातियों के लिए कसौटी नहीं समझना चाहिए। मौलिक तथ्यों की अज्ञानता और उनके न समझने की योग्यता अनेक विकास योजनाओं की असफलता का कारण बन सकती है।

जन-जाति जीवन समस्याओं से भरा पड़ा है। आदिवासी जनता में उत्थान का काम स्वराज्य मिलने से पूर्व ठक्कर बापा ने शुरू किया था। तदुपरान्त भारत के अन्य राष्ट्रीय नेताओं ने इस दिशा में सोचना शुरू किया। स्वतन्त्रता मिलने के बाद तो जन-जातियों के लिए कई पृथक् पृथक् सरकारी एवं गैर सरकारी अनुसन्धान संस्थाएं बन गईं। जन जाति जीवन के अध्ययन के लिए अनेक विश्वविद्यालयों में अनुसन्धान कार्य शुरू हुए। परिणाम स्वरूप कुछ नये तथ्य प्रकाश में आए और जन-जाति विकास की परियोजनाओं को सही ढंग से चलाने का कार्य सुलभ हुआ।

जैसा कि डा० गुहा के उपर्युक्त कथन में मनोवैज्ञानिक स्वीकृति एवं ग्रहण की क्षमता का जिक्र किया गया है, हम समझते हैं कि यदि जनजातियों के रीति रिवाजों की खिल्ली उड़ाने तथा उनके स्थानीय कानूनों में परिवर्तन करने की अपेक्षा उनके हृदय परिवर्तन के लिए प्रयास किए जाएं तो उनके सही विकास की योजना बनाने में न केवल सफलता ही मिलेगी बल्कि उन्हें क्रियान्वित करने में भी आसानी हो जाएगी।

अनुसूचित जन-जातियों के विकास के लिए जो प्रथम पंचवर्षीय योजना बनी थी उसमें यह प्रस्ताव रखा गया था कि सर्वांगीण क्षेत्रीय योजनाएं हाथ में ली जाएं। अनुसूचित जन-जातियों के क्षेत्रों के लिए योजनाओं में पृथक् रूपसे उपयोजनाएं बनाने का भी प्रस्ताव था। पंचम पंचवर्षीय योजना के प्रारूप में जन-जाति विकास के प्रथम वर्ष के लिए दस करोड़ रुपयों की व्यवस्था है। योजना आयोग ने इस तथ्य को स्वीकार किया है कि प्रत्येक राज्य की उपयोजना के क्षेत्रों में कई अन्य योजनाओं को भी शामिल किया जाएगा। प्रत्येक योजना के लिए एक सर्वांगीण क्षेत्रीय विकास कार्यक्रम चलाया जाएगा और यह उस क्षेत्र के लोगों तथा क्षेत्र की विभिन्न समस्याओं पर प्रकाश डालेगा।

जन-जाति विकास के लिए जो परियोजनाएं बनी हैं उनमें राज्यों के आयस्रोतों के लिए यह प्रस्ताव है कि केन्द्र द्वारा उन्हें उचित आर्थिक सहयोग दिया जाए। पंचम योजना के मसविदे में पर्वतीय तथा जन-जाति क्षेत्रों के विकास के लिए 500 करोड़ रुपए लगाने का प्रस्ताव रखा गया है जिनमें से 200 करोड़ रुपए जन-जाति क्षेत्रों के विकास के लिए हैं। 1974-75 के बीच जन-जातियों की पूर्ण विकास योजना समाप्त हो जाएगी और तब उसका स्थान लेगी जन-जाति सर्वांगीण योजना। यह योजना अधिक विस्तृत है और जन-जातियों के बहुसंख्यकीय क्षेत्र पर लागू हो सकेगी।

सर्वांगीण क्षेत्रीय विकास कार्यक्रम को अविलम्ब सही रूप से लागू करने के लिए विशेषज्ञों की जरूरत होगी। इस सम्बन्ध में गृहमन्त्रालय ने सुझाया है कि क्षेत्रीय स्तर पर योजना की रिपोट तैयार करने के लिए दल बनाए जाएं तथा जन-जाति अनुसन्धान संस्थान की सेवाएं भी ली जाएं। 1974-75 के दौरान जन-जाति क्षेत्रों के लिए राज्य वार धन की जो व्यवस्था की गयी है वह इस प्रकार है :—

आन्ध्र प्रदेश 1 लाख रुपए, असम 1 लाख रुपए, बिहार 2-50 लाख रुपए, गुजरात 1-50 लाख रुपए, हिमाचल प्रदेश 0-25 लाख रुपए, केरल 0-25 लाख रुपए, महाराष्ट्र 1-50 लाख रुपए, मध्य प्रदेश 3-50 लाख रुपए, मणिपुर 0-25 लाख रुपए, राजस्थान 150 लाख रुपए, कर्नाटक 0-25 लाख रुपए, उड़ीसा 2-50 लाख रुपए, तामिलनाडु 0-25 लाख रुपए, त्रिपुरा 0-25 लाख रुपए, उत्तर प्रदेश 0-15 लाख रुपए, पश्चिम बंगाल 1-00 लाख रुपए, दादरा व नगर हवेली 0-25 लाख रुपए,।

जन-जातियों के उत्थान और एक सहज सांस्कृतिक जीवन जीने के लिए जरूरी है कि उन्हें तरह-तरह के उद्योग धन्धे सिखाए जाएं। ये लोग बहुत भोले वाले तथा सीदे सादे होते हैं। वे दुनियां का गिरगिटी रंग नहीं जानते हैं। अतः उन्हें चालाक और धूर्त लोग ठगते रहते हैं।

उनके व्यवसाय और आय-स्रोत के माध्यम बहुत से क्षेत्रों में परम्परागत और पुराने ढंग के हैं और उनके लिए ऐसे व्यवसाय विकसित किए जाने चाहिए जिनसे वे अपनी आय बढाने का उचित अवसर प्राप्त कर सकें।

जन-जातियों की बस्तियां अधिकतर ऐसे इलाकों में स्थित हैं जहां यातायात की सुविधाएं बहुत कम हैं। अतः सड़कों और परिवहन साधनों की सुविधा होनी चाहिए। जन-जातियों के भूमिहीन लोगों को जमीन देकर उनमें कृषि कार्य के लिए रुचि उत्पन्न करनी चाहिए तथा संस्थान तथा उपकरण उपलब्ध करने चाहिए।

जन-जातियों के विकास के सम्बन्ध में यह भी बहुत जरूरी है कि उन्हें वैज्ञानिक रूप से प्रोत्साहित किया जाए।

अब तक जिन राज्यों ने जन-जातियों के विकास के लिए जो योजनाएं बनाई हैं वे ये हैं :—आन्ध्र प्रदेश-10 योजनाएं, बिहार-15 योजनाएं, गुजरात-6 योजनाएं, हिमाचल प्रदेश-6 योजनाएं, मध्य प्रदेश-44 योजनाएं, महाराष्ट्र-4 उड़ीसा-33 योजनाएं, राजस्थान-6 योजनाएं, त्रिपुरा-9 योजनाएं, पश्चिमी बंगाल-34 योजनाएं।

यदि जन-जातियों का सर्वांगीण विकास करना है तो उनके लिए गम्भीर रचनात्मक दृष्टिकोण अपनाना होगा तथा सामाजिक अध्ययन के परिप्रेक्ष्य में योजनाओं को सही रूप देना होगा।

म० न० 6785,
गली न० 3/10, देव नगर,
करोल बाग, नई दिल्ली-110005

दान्तेवाड़ा का प्रयोग

एस०आर० गुप्ता

मध्य प्रदेश में बस्तर जिले का दान्तेवाड़ा क्षेत्र देश का सबसे प्राचीन और पिछड़ा क्षेत्र होते हुए भी आकर्षक है। इसी दान्तेवाड़ा के भीतरी क्षेत्र में एक छोटा सा गांव है धुरली। इस ग्राम में मुरिया आदिवासी रहते हैं। उनका रहन-सहन पीढ़ियों से एक-सा चला आ रहा है। यहां पर जगली किस्म की झोपड़ियां हैं, सब ओर कच्चे रास्ते हैं। यहां सड़कों और पीने के पानी का कोई प्रबन्ध नहीं है। खेती बिल्कुल पुराने और परम्परागत तरीके से की जाती है। गांव में कोई बैलगाड़ी तक नहीं हैं। ये सब यहां सदियों से चले आ रहे पिछड़ेपन की कहानी कहते हैं।

फिर भी दान्तेवाड़ा के अन्य बहुत से गांवों के मुकाबले धुरली ग्राम काफी अच्छा है। देश में लोहे की सबसे बड़ी खान बैलाड़िला परियोजना यहां से कुछ मील दूर स्थित है। हालांकि एक कोलतार की सड़क और एक बिजली का तार यहां के पास से होकर गुजरता है पर इस गांव में किसी भी घर में बिजली नहीं है। यहां की एकमात्र पक्की इमारत है प्राथमिक विद्यालय की इमारत और ग्रामवासियों को इस बात का फख्र है कि आसपास के क्षेत्रों में बहुत से ग्रामों में ऐसी इमारत नहीं है। ग्रामवासी अक्सर मिट्टी काटने की मशीन, गाड़ियां, क्रेनें और रेलगाड़ियां देखते रहते हैं और इसी में वे अपने को आधुनिकता के समीप होने का एहसास करते हैं।

पर, पिछड़ेपन और उन्नति के इस संगम के पीछे अनेकों दुखभरी कथाएं हैं। इसके लिए आदिवासियों का निर्मम शोषण हुआ है। बहुत थोड़े पैसे देकर उनसे शारीरिक श्रम कराया गया और आदिवासियों की कन्याओं को बहका फुसला कर उन्हें घरेलू नौकरानियां बना दिया गया। बाद में उन्हें उनकी तकदीर के सहारे छोड़ दिया गया। तरक्कीशुदा लोगों ने उनका सर्वस्व लूटा और बाद में उन्हीं के गांव वालों ने उन्हें शरण नहीं दी।

पर मगू अन्य लोगों से भिन्न था। उसने अपनी बेटी का तिरस्कार करने के बजाए उसे घर में जगह दी। पर मंगू इस बात से चिन्तित था कि उसकी बेटी को रहन-सहन के लिए अच्छी चीजों की जरूरत थी और उनका बन्दोबस्त कैसे किया जाए? ऐसे समय में दान्तेवाड़ा की आदिवासी विकास एजेंसी ने उसकी सहायता की। एजेन्सी ने मंगू को 100 मुर्गियों का एक मुर्गीपालन केन्द्र स्थापित करने में सहायता दी। उसे इस काम के लिए पूरा पैसा एजेन्सी ने दिया। मुर्गीपालन के लिए घर बनाया गया, 100 मुर्गियां खरीदी गई तथा लड़की काम में लग गई। यह सब मार्च, 1974 से शुरू हुआ और 5 महीने में 5,577 अण्डों का उत्पादन हुआ जिन्हें 2,116 रुपयों में बेचा गया। मंगू और उसकी बेटी को इस तरह का अतिरिक्त आय का कोई और साधन अन्यत्र नहीं मिल सकता था।

मंगू की देखादेखी उसके पड़ोस के एक शिक्षित आदिवासी युवक कुमु ने भी उसका अनुसरण किया। उसने 5 महीने में 1,626 रुपए के अण्डे बेचे। फिर तो गांव के अन्य आदिवासी भी तैयार हो गए। एक साल में ही आदिवासी विकास एजेन्सी ने ऐसी ग्यारह मुर्गीपालन इकाइयां शुरू कराई जिनमें से आठ तो धुरली में ही हैं। एक इकाई दान्तेवाड़ा में है जो नारीनिकेतन की एक महिला चला रही है। 4 महीने के समय में इन ग्यारह इकाइयों में कुल मिलाकर 14,711 रुपए के अण्डे बेचे गए हैं। यह पैसा आदिवासी अपने बैंक खाते में जमा कर रहे हैं। उनके लिए सम्भवतः यह पहला अवसर है जबकि उन्होंने कुछ बचत की है और उसे बैंक में जमा कराया है।

दान्तेवाड़ा की जनजातीय विकास एजेन्सी का उद्देश्य इस क्षेत्र का केवल आर्थिक विकास करना ही नहीं बल्कि यहां की चहुंमुखी प्रगति कराना है। 1976-77 तक परियोजना के लिए 2 करोड़ रुपए का प्रावधान है। यहां कृषि, बागवानी, भूमि विकास और पशुपालन, पशुओं की नस्ल में सुधार आदि कार्यक्रम चलाए जाएंगे और आदिवासियों के लिए मुर्गीपालन और दुग्ध-पालन जैसे सहायक धन्धे मुहैया किए जाएंगे। 80 लाख रुपए की एक योजना प्राथमिकता के आधार पर जोड़क सड़कें और अन्य छोटी-छोटी सड़कें बनाने की भी है। लघु सिंचाई और नहरों से सिंचाई करने की योजनाओं पर 22 लाख रु० व्यय करने का प्रावधान है और यह राशि बाद में आवश्यकतानुसार बढ़ाई जा सकती है। आदिवासियों को अपना उत्पादन बढ़ाने के लिए अन्य सामाजिक कार्यों के लिए ऋण उपलब्ध कराने के उद्देश्य से परियोजना क्षेत्र में सहकारी समितियों का पुनर्गठन किया जा रहा है और विपणन व्यवस्था में भी सुधार किया जा रहा है। इन सबके अलावा, मत्स्य-पालन, वनरोपण तथा लघु उद्योगों के विकास पर भी ध्यान दिया जाएगा।

एजेन्सी के प्रयासों से कुछ आदिवासी कृषकों ने गेहूं की फसल अपनाई है। उन्होंने जीवन में पहली बार रबी की फसल का नाम सुना था। मातेनर गांव के आदिवासी कृषक जोगा के पास 3 एकड़ जमीन है जो पहले गर्मियों में सूखी और बेकार रहती थी पर, अब एजेन्सी से डीजल पम्प मिल जाने पर पिछले वर्ष गेहूं बोया और उसके उसी खेत में गेहूं की सुनहरी बालियां लहलहा उठीं। जोगा की ही तरह और भी 10-12 आदिवासी कृषकों ने रबी के मौसम में गेहूं की फसल ली है।

इन जनजातीय क्षेत्रों में धान की खेती भी शुरू की गई है तथा उर्वरकों का प्रयोग भी किया जाने लगा है। एजेन्सी ने इस दिशा में बहुत महत्वपूर्ण योगदान दिया है। पिछली दो फसलों के दौरान 700 क्विण्टल धान का बीज तथा 300 टन उर्वरकों का वितरण किया

गया है। इनके लिए एजेन्सी ने काफी मात्रा में सहायता दी है। पनेड़ा, कार्ली, गांमावाड़ा, रेंगानर और वसनपुर गांवों के आदिवासी परियोजना की सिंचाई योजनाओं के पूरा होने का बेताबी से इन्तजार कर रहे हैं। इन योजनाओं के पूरा हो जाने पर लगभग 1,800 एकड़ भूमि पर सिंचाई की जा सकेगी। जल्दी ही मेतापल और काटेकल्याण गांवों तक पक्की सड़कें बन जायंगी और इन क्षेत्रों तक आसानी से आया जाया जा सकेगा। एजेन्सी की निधि में से 110 किलोमीटर लम्बाई की पक्की सड़क बनाई जाएंगी। परियोजना क्षेत्र में 79 लाख रुपए की लागत की एक ग्रामीण विद्युतीकरण योजना भी स्वीकृत की गई है। इसके लिए एजेन्सी ने 15 लाख रु० देना स्वीकार किया है। फिर तो मुख्य क्षेत्र से कटे हुए अलग-थलग गांवों में रहने वाले आदिवासी भी बिजली देखेंगे और उनके घरों में भी लालटेन की जगह बल्ब जलेंगे। परियोजना ने उन आदिवासी कारीगरों के लिए, जो लकड़ी और बांस की दस्तकारी का काम करते हैं, प्रशिक्षण की व्यवस्था की है और इसके लिए हस्तकला मण्डल की मदद भी ली है।

जनजातीय क्षेत्रों में मनोरञ्जन के लिए छविगृह (सिनेमा) या होटल, रेस्तरां तो कल्पना से भी परे की वस्तुएं हैं। यही नहीं, वहां रहने वाले आदिवासियों ने अपने जीवन में शायद ही कोई रेलगाड़ी या बस मोटर देखी हो। वहां मनोरञ्जन के नाम पर गांव की पैंठ (बाजार), शराब का ठेका और कभी-कभी आयोजित किए जाने वाले लोक-नृत्य ही हैं। आदिवासियों के इस संकुचित और सीमित सामाजिक जीवन को देख-सोचकर एजेन्सी ने इन्हें बाहर भ्रमणों पर ले जाने की व्यवस्था करने की आवश्यकता समझी। आदिवासी कृषकों का एक दल पिछले साल जबलपुर कृषि विश्वविद्यालय के किसान-मेले में गया था और उन्हें वहां जाने से बहुत लाभदायक जानकारी भी मिली। एक अन्य दल दुर्ग में डेयरी-फार्म और मुर्गीपालन केन्द्र देखने गया था।

बागवानी के विकास के लिए एजेन्सी ने आदिवासियों को फलों के 3,000 पौधे बिल्कुल मुफ्त बांटे हैं। मत्स्य पालन योजना के अन्तर्गत तालाबों में मछलियों के बीज डाले गए हैं। बैलाडिला के औद्योगिक क्षेत्र में आदिवासियों को सहायक रोजगार उपलब्ध कराने के उद्देश्य से डेयरी-पालन के लिए पशु भी मुहैया किए जा रहे हैं।

आदिवासियों को कर्जे से छुटकारा दिलाने और उन्हें साहूकारों के चंगुल से मुक्ति दिलाने के लिए आदिवासियों को आसान शर्तों पर ऋण मुहैया करने की योजना भी चलाई जा रही है। प्राथमिक सहकारी समितियों का पुनर्गठन किया गया है और सभी नामजद सदस्य आदिवासियों को ही बनाया गया है। ये प्राथमिक समितियां सहकारी बैंकों और विपणन समितियों के साथ मिलकर काम करेंगी। इनका मुख्य उद्देश्य आदिवासियों को कर्ज के भार से छुट्टी दिलाना है।

जनजातियों के विकास का काम इतना आसान नहीं है। शुरू-शुरू में तो वैसे ही सफलता कम ही मिलती है। कुछ फिर यहां के आदिवासी सरकारी योजनाओं के पहले के अनुभव के कारण पूरी सहायता मिलने पर भी इन योजनाओं को अपनाने में झिझकते हैं। इसलिए एजेंसी को इस ओर विशेष ध्यान देना होगा और आदिवासियों में इन कार्यक्रमों के प्रति रुचि और विश्वास जगाना होगा। प्रशासनिक और व्यवस्था सम्बन्धी विभिन्न अधिकारियों को आपस में पूरा सहयोग करना होगा। यह भी आवश्यक है कि बैंक, सहकारी समितियां और अन्य ऐसी ही संस्थाएं आपस में पूरा तालमेल रखें। इन सबके अलावा एक अन्य महत्वपूर्ण पहलू है वहां के लोगों का सहयोग। जन-सहयोग के बिना हर कार्यक्रम लड़खड़ा जाता है।

इस सन्दर्भ में एक महत्वपूर्ण तथ्य है परियोजना क्षेत्र में भेजे जाने वाले अधिकारियों के लिए आवश्यक सुविधाओं की समुचित व्यवस्था करना। उस क्षेत्र की कठिन परिस्थितियां, वहां के जीवन की परेशानियां आदि देखकर अधिकारी वहां काम करने जाने में हिचकिचाते हैं। वे हर सम्भव प्रयास करके वहां से शीघ्र छुटकारा पाना चाहते हैं। अतः कर्मनिष्ठ और कर्त्तव्य-परायण अधिकारियों का ही चुनाव करना होगा। दूसरे, आवश्यक सुविधाएं मिलने पर उनको वैसे भी मानसिक बल मिलेगा।

□

जनजातियों का जीवन

सुधार की ओर

डा० रामगोपाल चतुर्वेदी

मध्य प्रदेश की जन-जातियों के जीवन और रहन-सहन के बारे में अभी जनसाधारण को बहुत कम ज्ञान है। मध्य प्रदेश के अन्तर्गत बुन्देलखण्ड के भू-भाग में मुझे अनेक बार शिकार पर जाने का मौका मिला है। उन्हीं दिनों जन-जातियों को निकट से देखने का संयोग हुआ था। इनका सामाजिक जीवन, वेश-भूषा, रहन-सहन और गुजर-बसर के साधन आदि बातें ऐसी हैं, जिनका यदि गहराई से अध्ययन किया जाए तो बड़ी दिलचस्प बातें सामने आएंगी।

बुन्देलखण्ड में प्राय: सौंर जाति के लोग अधिकतर पाए जाते हैं। ये लोग बड़े साहसी और बहादुर होते हैं। शिकार का हांका जब शुरू होता है तो हांका करने वालों में सौंर ही अधिक रहते हैं। इनके पास लोहे का फरसा या कुल्हाड़ी रहती है। लोहे के फरसा को पत्थर से बजाकर यह हांका करते हैं। कभी-कभी यह काम बड़ा खतरनाक भी हो जाता है। जब कभी तेंदुआ या बाघ हांके से सजग हो कर हकइयों पर टूट पड़ता है। परन्तु इस काम को ये लोग इस खूबी से करते हैं कि जंगली जानवर आगे को ही बढ़ता जाता है। चाहे गर्मी के दिनों की लू लपट हो, या कड़ाके की सर्दी हो, सौंर जाति के लोग फटे-पुराने चिथड़ों में नंगे बदन रहते हैं। जाड़ों के दिनों में आग जलाकर अलाव के सहारे बैठ कर रात भर गुजार देते हैं। इनका बदन गठीला होता है। इस जाति में मर्द ज्यादा संख्या में होते हैं और नारी अपेक्षाकृत कम। इनके छोटे-छोटे बच्चे भी शिकारी जीवन की विविध अवस्थाओं से परिचित रहते हैं। इनकी गुजर-बसर का एक जरिया शिकार की "घात" लाना है।

यहां "घात" लाना शब्द का अर्थ समझना जरूरी है। होता यह है कि ये जन-जातियां खासकर सौंर लोग यह तलाश करके लाते हैं कि जंगली जानवर जैसे बाघ या तेंदुआ किस समय किस स्थान पर मौजूद है। इस खबर को वे अपने ही भाई-बन्धुओं के जरिए 10-5 मील चलकर शिकारी के पास पहुंचाते हैं। जनजातियां यह काम बड़ी चौकसी से करती हैं और कोई-न-कोई सौंर बराबर वन-जीवों की खोज खबर लेने में लगा रहता है। शिकारी जब पहुंचता है तो सौंर उसे ठीक ठिकाने पर लेजाते हैं। इस काम में वे बड़े माहिर होते हैं। घात लाने पर उन्हें 10-20 रुपए इनाम मिल जाते हैं। इससे उनकी गुजर चलती है।

वनजीवों का जैसा सूक्ष्म और गहरा अध्ययन इन जनजातियों का होता है वैसा शायद ही किसी का हो। ये लोग प्राय: वनों में ही रहते हैं। वन्यजीवों की आदतों का निकट से अध्ययन करते हैं। बराबर इस टोह में रहते हैं कि वन्यजीव किस समय कहां और क्या करते हैं। गर्मियों की लू लपट भरी दोपहरी में सौंर बाघ या तेंदुए का मीलों पीछा करते हैं। जब बाघ या तेंदुआ गर्मी से परेशान होकर किसी ठण्डी जगह विश्राम करता है तो ये उस स्थान तक चोरी-छिपे पहुंच जाते हैं। शिकारी का पथ-प्रदर्शन ये ही करते हैं। दिन हो या रात, वनों में यह अपना फरसा और कुल्हाड़ी लेकर निर्भय रूप से विचरण करते हैं।

कई बार ऐसे मौके आए हैं जब कड़ाके की सर्दी में रात के दो बजे सौंर ने आकर खबर दी है कि इस समय सांभर तालाब में लोट लगाने जाएगा। शिकारी उनके पीछे चल पड़ता है क्योंकि शिकार में पथ-प्रदर्शन का काम सौंर लोग अच्छा करते हैं। जब बड़े भोर-तड़के ही अगोट खेलने शिकारी जंगल में पहुंच जाते हैं, तो ये जन-जातियां ही ठीक स्थान पर मुस्तैदी के साथ पहुंचा देती हैं। घने जंगल में रात के अन्धेरे में ये लोग ऊंची-ऊंची पहाड़ियों की चोटी तक शिकारी को पहुंचा देते हैं। सूर्योदय होने पर

शिकारी दूरबीन से दूर-दूर तक वन जीवों को आते जाते देख लेता है। इस प्रकार की शिकार को "अगोट" खेलना कहते है।

आदमखोर बाघों और तेंदुओं की शिकार का तरीका भी जन-जातियां ही सुझाती हैं। इनकी मदद के बिना यह काम बिल्कुल सम्भव नहीं है। आदमखोर बाघ या तेंदुआ प्रायः हांका कराने पर हाथ नहीं आते। अक्सर ऐसा होता है कि हकइयों पर ही आदमखोर टूट पड़ते हैं। इस खतरे को टालने के लिए जन-जातियां कारगर तरीका सुझाती है। ये लोग शिकारी को ऐसे सुरक्षित स्थान या ऊंचे मचान पर बैठा देते है जहां जंगली जानवर को शक भी नहीं पड़ता। आदमखोर जानवर को मारने के लिए ऐसा जाल बिछाते हैं कि संध्या समय ही जंगल के बीच बकरी या भैंस का पड़ा खूंटे से बांध देते हैं। जब बकरी मिमयाती है या भैंस का पड़ा रम्भाता है तो बाघ उस आवाज को सुन कर धीरे धीरे शिकार के लिए आ पहुंचता है। रात घिर आने पर आदमखोर जानवर बकरी या पड़ा पर जैसे ही हमला करने की कोशिश करता है, वैसे ही पहले से तैनात शिकारी उसे अपनी बन्दूक का निशाना बना देता है। इस तरीके से आदमखोर बाघ या तेंदुए चपेट में आ जाते हैं।

जनजातियों का जीवन सदियों से गरीबी और अशिक्षा में कटता रहा है। लेकिन कुछ समय पूर्व से भारत सरकार के कृषि मन्त्रालय ने इनके जीवन में सुधार लाने के लिए अनेक योजनाओं को चलाया है। मध्य प्रदेश में बस्तर जिले में 5-7 जगह ऐसे क्षेत्र बनाए गए हैं जहां जनजातियों के सुधार के लिए कई परियोजनाएं चालू की गई हैं। मध्य प्रदेश के बस्तर जिले में कोंटा परियोजना और दांतेवाड़ा परियोजना चालू की गई हैं।

मध्य प्रदेश की जनजातियां बहुत समय से तबाही में रही हैं। आजीविका के लिए इन्हें बहुत कठिनाइयों से जूझना पड़ता है। अधिकतर लोगों के पास जोत भी नहीं है कि उससे उनकी आसानी से गुजर बसर हो सके। इनमें कुछ खेती भी करते हैं। पर उनकी खेती के तौर-तरीके पिछड़े हुए हैं। इस बात को ध्यान में रखकर मध्य प्रदेश का कृषि विभाग उनको खेती-बाड़ी के बारे में दिशा-निर्देश कर रहा है। इसके लिए विशेष कार्य-क्रम तैयार किए जा रहे हैं। इन कार्यक्रमों को राज्य स्तरीय समन्वय समिति अमल में ला रही है।

इनमें से अधिकांश लोगों के स्थायी घरबार नहीं हैं। इसीलिए इनकी बस्तियों को जोड़ने वाली न तो कच्ची-पक्की सड़कें हैं न यातायात की व्यवस्था है। राज्य सरकार अब उनके लिए स्थायी मकान और स्थायी धन्धे उपलब्ध कराने के लिए पूरा प्रयत्न कर रही है। इसके लिए उन्हें आवश्यक आर्थिक सहायता दी जाती है। जहां कहीं इनकी बस्तियां हैं उन्हें यथासम्भव सड़कों से जोड़ा जा रहा है। शिक्षा की भी व्यवस्था की जा रही है। इनकी बहतरी के लिए छोटे-छोटे उद्योग धन्धों को बढ़ावा दिया जा रहा है और साथ ही आर्थिक सहायता भी दी जा रही है।

जनजातियों के क्षेत्रों में बहूद्देश्यीय खण्डों की स्थापना की गई है। इससे उनके सामाजिक, आर्थिक और सांस्कृतिक जीवन में धीरे-धीरे सुधार लाया जा रहा है। उनके पुराने रीति-रिवाज और रहन-सहन के ढर्रे में परिवर्तन हो रहा है। □

उत्तर प्रदेश की अनुसूचित जनजातियां

छेदी लाल साथी

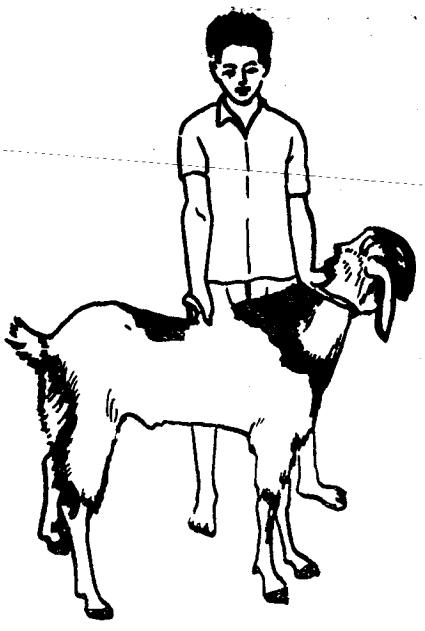

सन् 1967 में उत्तर प्रदेश में निवास करने वाली पांच जन जातियों थारू, भोक्सा, भोटिया, जौनसारी तथा राजी (बनरावत) को भारत सरकार ने अनुसूचित जनजातियां घोषित किया। इनकी जनसंख्या इस समय लगभग साढे तीन लाख के इस प्रदेश में पाई जाती है। ये जातियां मुख्यत: पहाड़ी व तराई के इलाकों में पाई जाती हैं। इन जातियों के अपने अलग अलग क्षेत्र हैं जहां ये रहती हैं।

(1) थारू जनजाति बहराइच, गोण्डा, गोरखपुर, खीरी तथा नैनीताल में मुख्यत: पाई जाती है। इसकी जनसंख्या इन सब इलाकों में लगभग 66 हजार के करीब है।

(2) भोक्सा जन जाति बिजनौर, नैनीताल तथा पौढ़ी गढवाल में अधिकांशत: पाई जाती है। यहां इनकी कुल संख्या करीब 12-13 हजार के बीच में होगी।

(3) भोटिया जन जाति आल्मोड़ा, चमोली, पिथौरागढ़ व उत्तर काशी में पाई जाती है। इन इलाकों में इसकी कुल जनसंख्या करीब 60 हजार के लगभग है।

(4) जौनसारी जनजाति, देहरादून, टेहरी गढ़वाल, उत्तर काशी में पाई जाती है। इसकी जनसंख्या यहां लगभग एक लाख होगी।

(5) राजी (बनरावत) जनजाति मुख्यत: पिथौरागढ़ में पाई जाती है और इनकी आबादी मुश्किल से 300 के करीब होगी।

भारत सरकार ने अगस्त 1967 में "शेड्यूल्ड कास्ट्स/एण्ड शेड्यूल्ड ट्राइब्स आर्डर (अमेण्डमेन्ट) बिल 1967" लोक सभा में पेश किया जिसके पास हो जाने पर उत्तर प्रदेश में 12 और जातियां जन जातियों में शामिल की गईं। ये हैं :— कोल, भील, बैगा, चैरी, मुइयां, खरवार, कारवा, पनकिया, परेहिया, अगरिया, सहरिया पथरी तथा घसिया। इनकी जनसंख्या यद्यपि बहुत कम है फिर भी इन सबको मिलाकर जनजातियों की तादाद उत्तर प्रदेश में करीब 6 लाख के हो जाएगी।

भारतीय संविधान के विभिन्न अनुच्छेदों में इन जातियों के बहुमुखी विकास के लिए बहुत सी कानूनी व्यवस्थाएं की गई हैं। संविधान के अनुच्छेद 15(4)व 16(4) तथा 19 में संसद तथा विधान मण्डल द्वारा जनजातियों को हक दिलाने के लिए तथा शिक्षा व आर्थिक क्षेत्र में उनका विकास करने के लिए विशेष व्यवस्था की गई है। अनुच्छेद 46 में जनजातियां जैसे कमजोर वर्ग के आर्थिक व शैक्षिक विकास के लिए विशेष व्यवस्था किए जाने का उल्लेख है। अनुच्छेद 330, 332 व 334 द्वारा संसद व विधान सभा में एक निश्चित अवधि तक जनजातियों के प्रतिनिधि लिए जाने की व्यवस्था है तथा 335 द्वारा सरकारी नौकरियों में आरक्षण पाने का उन्हें हक है।

भारत सरकार द्वारा गठित पिछड़ा वर्ग आयोग ने 1955 में अपनी रिपोर्ट राष्ट्रपति को पेश की। उस रिपोर्ट के खण्ड 3 के पृष्ठ 37 में अनुसूचित जनजातियों के प्राचीन इतिहास की एक झलक इस प्रकार मिलती है :—

आर्यों के भारत पर आक्रमण करने पर भारत के मूल निवासियों के तीन वर्ग हो गए। एक वह जिसने आरम्भ में ही बिना लड़े आर्यों के सामने अपने को समर्पित कर दिया। उन्हें आर्यों ने अपने घर में काम करने के लिए दास बनाकर रखा। कहार, तमोली आदि जातियों के लोग उन्हीं में से हैं।

दूसरा वर्ग वह जो अपनी आजादी के लिए आर्यों से लड़ा और खूब लड़ा और जब हार गया तो आर्यों के दास बन गए। वे आज के अछूत व अनुसूचित जाति के लोग हैं।

तीसरा वर्ग मूल भारतवासियों का वह था जो आर्यों से अपनी आजादी की रक्षा के लिए लड़ा और जम कर लड़ा लेकिन जब हार गया तो सुदूर जंगलों में जाकर नाना परेशानियां उठाना उसने कुबूल किया लेकिन आर्यों की गुलामी उसने स्वीकार नहीं की। दूसरे शब्दों में वे ही अनुसूचित जनजाति के लोग हैं जो अपनी प्राचीन सभ्यता व संस्कृति की थाती को आज भी अपनी आजादी के दर्द के साथ सीने में छिपाए वर्तमान सभ्यता से दूर जंगलों में मारे मारे फिरते हैं। उनके रिवाज, खान-पान, शादी-विवाह इन्हीं कारणों से आज भी शेष भारतवासियों से भिन्न हैं।

थारू जनजाति

यह जाति मुख्यतः गोंडा, बहराइच, गोरखपुर, लखीमपुर खीरी, नैनीताल छितौनी घाट से लेकर हिमालय की तलहटी में करीब 195 मील की लम्बाई और करीब 8 मील की चौड़ाई में पाई जाती है। ये एकाकी जीवन बिताने की आदी हैं अतः इसमें सामाजिक, बौद्धिक, शैक्षिक तथा आर्थिक विकास देश की अन्य जातियों के मुकाबले नहीं के बराबर है। इनकी सभ्यता व रीति रिवाज भी दूसरों से भिन्न हैं।

थारु जन जाति का मुख्य पेशा खेती, शिकार, जंगल में लकड़ी का काम, पशु तथा मुर्गी पालन है। जंगली भाग में बसे होने के कारण इनके घर अधिकतर लकड़ी और फूस के बने होते हैं। इनके घर पड़ोस के अन्य लोगों से भिन्न होते हैं। इनके घरों में बड़े-बड़े कमरे होते हैं। उनका पारिवारिक वितरण दीवारों से न होकर देहरियों से होता है। इनके घरों में देवी देवताओं का स्थान भी बना होता है। वहां ये लोग बड़ी सफाई रखते हैं। सप्ताह में एक बार पीली मिट्टी व गोबर से इनकी औरतें अपने घर को अवश्य लीपती हैं। कभी-कभी अपने घरों की दीवारें यह औरतें लाल, पीले व काले रंग से रंगती हैं और उन पर हाथी, घोड़े आदि तरह-तरह के चित्र बनाती हैं।

इनका भोजन साधारण होता है। औरतें स्नान करके ही भोजन पकाती हैं। नाश्ते में यह नमक मिला पका चावल खाते हैं। दोपहर का भोजन पुरुष खेतों में ही चावल, दाल व सब्जी तथा रात में कच्ची शराब व मांस अधिकांशतः खाते हैं। इनके यहां औरतें व बच्चे सभी शराब पीते हैं। शराब चावल से बनाते हैं। सामूहिक भोजों व शादियों में भी शराब अवश्य पीते हैं और पूजा आदि में भी शराब चढ़ती है।

थारू लोग अपने आपसी झगड़े बिरादरी पंचायतों से तय करते हैं। दोषी व्यक्ति को भोज के साथ शराब भी निश्चित रूप से देनी पड़ती है। पंचायत के रिवाज का हर व्यक्ति को पालन करना ही पड़ता है। दशहरा, दीवाली, खिचड़ी और होली इनके मुख्य त्यौहार हैं। इस अवसर पर थारू खूब नाच-गान करते हैं। इनके यहां संयुक्त परिवार हैं। घर का बूढ़ा मालिक होता है और उसकी औरत मालकिन होती है। इनमें आपसी मेल, व्यवहार और सहयोग की भावना खूब होती है।

थारू अपनी इष्ट देवी 'कालिका' की पूजा करते हैं। अन्ध-विश्वास व झाड़-फूंक इनमें अधिक है। गांव के पूरब में सामूहिक देव स्थान होता है जिसे 'नरायन' या 'वान' कहते हैं। यह अधिकतर नीम या पीपल के पेड़ के नीचे होता है।

शादी में लड़की वाला लड़के को पसन्द करता है। तय हो जाने पर नाच गान के साथ बारात जाती है। वर डोली पर बैठकर जाता है। शादी में जेवर, कपड़े, भोज, शराब आदि का रिवाज है।

मरने पर थारु मृतक के चारों तरफ बैठकर शराब पीते हैं। फिर मृतक को अन्तिम संस्कार के लिए ले जाते हैं। मृतक को जलाने अथवा गाड़ने दोनों का रिवाज है। तेरही भी होती है जिसमें पड़ोस के सभी थारू भोज व शराब लेते हैं।

थारू पुरुष घुटने तक धोती पहनते हैं। कुछ लोग लंगोटी जिसे 'कोपीन' कहते हैं, का प्रयोग करते हैं। बांहदार बनियान पहनते है। औरतें केवल कान, हाथ, पैर आदि को छोड़कर सभी हिस्सा ढके रहती हैं। स्त्रियां घघरी जिसे 'जामा' और 'नेमा' कहते हैं, पहनती हैं। जेवरों में थारू स्त्रियां टीका, हार, नथुनी, जोशन, अंगूठी, कान में बाली, माला और तरकी पहनती हैं जो चांदी या सोने के होते हैं।

बोक्सा जनजाति

यह जनजाति भी थारू की ही एक शाखा है। थारू की तरह ये भी अपने को राजपूतों का वंशज मानते हैं। राजपूतों के भांति ये अपने में राजवंशी, सूर्यवंशी और चन्द्रवंशी तीन गोत्र मानते हैं।

थारुओं की तरह बोक्सा में भी पंचायत का रिवाज है। पंचायत का एक मुखिया होता है जो 'तख्त' कहलाता है। उसके मरने पर उसका लड़का ही पंचायत का मुखिया हो जाता है जिसका सब लिहाज करते हैं। और मामलों को तय करने में वह अपने में से ही बने मुन्सिफ, दरोगा व सिपाहियों की मदद लेते हैं।

थारू की भांति बोक्सा भी सम्मिलित परिवार के रूप में रहते हैं। लेकिन बोक्सा स्त्रियों का परिवार पर वह आधिपत्य नहीं है जो थारू स्त्रियों का है। बोक्सा औरतें बहुत मेहनती हैं और अपना घर बहुत साफ रखती हैं। इनके घर अधिकतर छप्पर के होते हैं। दीवारों पर चित्रकारी करते हैं।

इनके यहां लड़के लड़कियों का विवाह 14 से 16 उम्र के बीच हो जाता है। लेकिन बोक्सा में विवाह ब्राह्मण पुरोहित द्वारा होता है।

आम तौर से मृतक जलाए जाते हैं लेकिन जिनकी मौत अपने आप से नहीं होती उनको गाड़ा जाता है।

थारू की तरह बोक्सा भी अपने देवी-देवताओं हुलका देवी, ज्वाला देवी के अलावा शिव व दुर्गा की भी पूजा करते हैं। भगवान को सर्वोत्तम मानते हैं। यह हिन्दुओं के त्यौहारों को मुख्यतः मानते हैं।

बोक्सा भी मांस व शराब का सदियों से प्रयोग करते आ रहे हैं। आर्थिक व शैक्षिक रूप से यह थारू से भी अधिक पिछड़े हुए हैं। खेती करना व जानवर पालना इनका मुख्य पेशा है।

भोटिया जनजाति

इस जनजाति के लोग उत्तराखण्ड के तिब्बत के दक्षिणी भाग में मुख्यतः पाए जाते हैं। इनकी भाषा तिब्बतियन से मिलती जुलती है। यह लोग लम्बा कोट, पाजामा और टोपी, जो पहाड़ के लोगों में अधिक प्रचलित है, पहनते हैं। इनका सबसे बड़ा देवता "गालबा" कहलाता है। यह अपने देवी देवताओं को

खुश करने के लिए बकरी की बलि देते हैं। इनके यहां कोई पुरोहित नहीं होता। इनके हिन्दुओं की भांति देवता भी नहीं होता। स्थानीय देवताओं के लिए पत्थर रख दिए जाते हैं। वहीं झण्डियां लगा देते हैं।

औरतों को अपना पति चुनने की आजादी है। बहुत सी अविवाहित रह जाती हैं। इनमें फाड़खती का रिवाज है। बड़े भाई के मरने पर उसकी विधवा छोटे भाई की पत्नी बन जाती है। भोटिया सब तरह का काम कर लेते हैं क्योंकि इनके पास कोई जमीन या खेती नहीं होती। पहले यह तिब्बत से व्यवसाय कर लेते थे लेकिन चीन के आक्रमण के बाद अब वह बन्द हो गया है।

जौनसारी जनजाति

जौनसार बावर (देहरादून) जौनपुर (टिहरी गढ़वाल) रावैन (उत्तरकाशी) परगना, ऊंची पहाड़ी क्षेत्र, गरही घाटियां इनके क्षेत्र हैं। यहां के रहने वाले जौनसारी कहलाते हैं। यहां खसास, शिल्पकार तथा हरिजन ये तीन तरह के लोग हैं। खसास में ब्राह्मण व राजपूत लोग हैं। इनमें शादी विवाह आपस में होते हैं। इनके अलावा शिल्पकार और हरिजन भी अछूतों में शुमार किए जाते रहे हैं। कोल्टा, कोली या कोई यह एक ही जाति के लोग हैं जो जौनसार बावर में मुख्यत: फैले हुए हैं। जौनसारी हिन्दुओं के देवताओं को पूजते हैं लेकिन इनका अपना देवता "महसू" भी है।

माघ का महीना इनके आनन्द प्रमोद का महीना है। इसमें सभी लोग एक साथ खाते-पीते, नाचते-गाते और रंग-रेलियां मनाते हैं। खूब मांस खाते हैं और शराब पीते हैं।

कोल्टा को इनके यहां समाज में सबसे निम्न वर्ग का आदमी समझा जाता है। इनके यहां एक स्त्री कई पति रखती है। वेश्यावृत्ति भी इनमें खूब है। इनकी लड़कियों को लोग अपने यहां दास दासी बना कर रखते हैं तथा खरीद कर बाहर बेचने ले जाते हैं। यहां लड़कियां आए हुए अतिथि को अन्य भोज्य पदार्थ के साथ ही भोग के लिए पेश की जाती हैं। इनसे छुआछूत का बर्ताव होता है।

श्री बल्देवसिंह आर्य के नेतृत्व में कोल्टा जांच समिति फरवरी 1959 में बनी। अक्टूबर 1960 को उसने अपनी रिपोर्ट दी। 84 सुझाव दिए उनमें महज एक पर अमल हुआ। 10 पर आंशिक अमल हुआ है।

राजी (बनरावत) जनजाति

राजी मुख्यत: अपने को बनरावत कहते हैं। यह शहर से दूर जंगलों में एकान्त में रहना अधिक पसन्द करते हैं। यह तिब्बत-बरमा परिवार के माने जाते हैं। यह लोग बहुत शर्मीले होते हैं और आम आदमियों से मिलना पसन्द नहीं करते हैं और सदियों से यह जंगलों व पहाड़ों पर छिप कर रहते हैं। यह वन के फलों, शहद और वहीं दूसरे वन पदार्थों को खाते हैं और लकड़ी के बर्तन इस्तेमाल करते हैं। जानवरों और मछली का शिकार इनका मुख्य पेशा है। यह एक जगह पर जम कर नहीं रहते।

तीन पीढ़ी के बाद वालों में यह लोग शादी करते हैं। बहुपतित्व का रिवाज इनके यहां भी है। युवावस्था होने पर ही लड़के लड़की का विवाह होता है। विधवा विवाह तथा तलाक बहुत कम प्रचलित है। बारात का रिवाज है। लड़की वाला साधारण नाश्ते का प्रबन्ध करता है। लड़के वाले को अपनी बारात के खाने का इन्तजाम खुद करना पड़ता है। लड़की के पिता महज 30 रु० और बकरियां लड़के के पिता को देते हैं।

राजी मुख्यत: प्रकृति की पूजा करते हैं। वह महादेव, गौरी, पार्वती व गंगा की पूजा करते हैं। वह मसान और भूत की भी पूजा करते हैं। छुरमल, मलयनाथ, गनानाथ, व खोलिया तथा खुदाई मलकान जन इनके अपने देवता है। हिन्दुओं के त्यौहारों में यह नाचते गाते हैं।

राजी मृतक का शव निकालते हैं। शोक में वह केवल उस दिन खाते नहीं हैं। दूसरे दिन वह चावल खाते हैं। सिवा जानवर के राजी कोई अपनी सम्पत्ति नहीं रखते। बूढ़ा आदमी ही परिवार का मुखिया माना जाता है। पहले यह शेर की खाल कपड़े की जगह इस्तेमाल करते थे। अब वह कुर्ता, धोती पाजामा, पहनने लगे हैं। जेवर या शृंगार का इनके समाज में कोई स्थान नहीं है। इनके घरेलू बर्तन या तो लोहे के या लकड़ी के होते हैं। यह बहुत ही गरीब और कर्ज से लदे रहते हैं। शिक्षा और मौजूदा सभ्यता से यह कोसों दूर हैं। प्राचीन भारतीय सभ्यता को आज भी थाती की तरह यह अपने में सहेजे हुए हैं।

चौथी पंचवर्षीय योजना में इन जनजातियों के लिए 1 करोड़ 7 लाख 10 हजार रुपया तथा केन्द्र संचालित कार्यक्रमों में 62 लाख रुपया निर्धारित था। पांचवीं पंच वर्षीय योजना में 1 करोड़ 40 लाख तथा केन्द्रीय सरकार के कार्यक्रमों में 1 करोड़ 81 लाख रुपया रखा गया है।

शासन ने इनके बच्चों की आरम्भ से उच्चतम शिक्षा निःशुल्क रखी है। इसके अलावा हर छात्र को वजीफे की व्यवस्था भी है।

इनके बच्चों के लिए आश्रम पद्धति के विद्यालय खोले गए हैं जहां पढ़ाई के साथ ही उनके रहने, खाने, कपड़े आदि की भी समुचित व्यवस्था है। यह स्कूल जोशीमठ (चमोली), मुन्स्यारी (पिथौरागढ़) कालसी, ट्यूनी (देहरादून) गदरपुर विडौरी (नैनीताल) में लड़कों के लिए तथा लांगा पौखरी (देहरादून) में लड़कियों के लिए हैं। अभी हाल में इसी तरह के स्कूल बिशुनपुरा (गोरखपुर) रामपुर, टूंडला (आगरा) सारनाथ (वाराणसी) ठाकुरगंज, (लखनऊ) में लड़कों के लिए खोले गए हैं जहां पढ़ाई, खाना, कपड़ा, रहना आदि सब मुफ्त है। सरकारी नौकरियों, असेम्बली व लोक सभा में 2½ प्रतिशत आरक्षण की इनके लिए व्यवस्था है।

महा मंत्री, उ०प्र० कांग्रेस कमेटी,
लखनऊ

हिमाचल की पांचवीं योजना

प्रावधान— 231.40 करोड़ रुपए

1973-74 से पूर्व		1979-80 के पश्चात्
11 लाख मीटरिक टन	खाद्यान्न उत्पादन	14 लाख मीटरिक टन
1.85 लाख मीटरिक टन	नकद फसल उत्पादन	2 63 लाख मीटरिक टन
2.40 लाख मीटरिक टन	फलोत्पादन	4.11 लाख मीटरिक टन
4,200 ग्राम	विद्युतीकरण	8,180 ग्राम
13,507 किलोमीटर	सड़कें	16,447 किलोमीटर
86 प्रमिशत	प्राथमिक शिक्षा	शत-प्रतिशत
532	जन-स्वास्थ्य संस्थाएं	584
2,728 ग्राम	पेयजल सुविधाएं	5,636 ग्राम

(हिमलोक सम्पर्क)

जनजातियों में सुपोषण का अभियान

रमेशदत्त शर्मा

तमिलनाडु का एक गांव। छोटे-छोटे बच्चे कतारों में बैठे हुए हैं, आम के पेड़ों की छांव में। सभी बच्चों के बाल करीने से संवारे हुए हैं। उनसे अलग हट कर थोड़ी दूर पर उनकी माताएं और बड़ी बहिनें बैठी हुई हैं और आपस में गप्प-शप कर रही हैं। निकट ही एक कमरे वाली एक झोंपड़ी बनी हुई हैं। दूर से लगता है जैसे कोई देहाती पाठशाला हो। लेकिन असल में यह छह साल से कम आयु वाले बच्चों को पोषक आहार बांटने का एक केन्द्र है। यहां मक्का, सोयाबीन और सुखाए हुए दूध को मिलाकर बनाए गए आटे से तैयार की गई 'उपमा' दी जा रही है। यह आयोजन विशेष पोषाहार कार्यक्रम के आधीन किया जा रहा है। इसका उद्घाटन सितम्बर 1967 में प्रधान मन्त्री श्रीमती इन्दिरा गांधी ने किया था। समाज कल्याण विभाग के निदेशक श्री ओ० के० मूर्ति ने एक पत्रकार को दी गई भेंट में बताया कि छह साल से कम आयु के 14 लाख बच्चों को इस कार्यक्रम से पोषक आहार दिया जा रहा है और हमारा लक्ष्य 20 लाख बच्चों को इस कार्यक्रम के अन्तर्गत पोषक आहार प्रदान करना है।

आमतौर पर हमारे देश में नवजात बच्चा, दूसरे देशों की तुलना में कम वजन लेकर पैदा होता है। और अगर उसे पूरा पोषण नहीं मिला तो वह जन्मजात कमी और भी गहरी होती है। उम्र में भले ही यह बच्चा छः साल का हो जाए लेकिन शारीरिक, तथा मानसिक विकास की दृष्टि से स्वस्थ बच्चे से उस की तुलना नहीं की जा सकती। चौथी पंचवर्षीय योजना में भारत सरकार का ध्यान इस ओर गया और एक सघन पोषाहार कार्यक्रम बनाया गया, जिसके अधीन एक ओर तो अधिक पोषण प्रदान करने वाले खाद्यान्न की किस्मों की खोज शुरू हुई और दूसरी ओर सस्ते पोषक आहार पैदा करके बड़े पैमाने पर देहातों और शहरों में झुग्गी झोंपड़ी वाले इलाकों में और पिछड़ी जातियों तथा जनजातियों में इनका वितरण किया गया।

नवजात बच्चों से लेकर 3 वर्ष तक के बच्चों के लिए, उनमें व्याप्त कुपोषण को दूर करने के लिए जनजाति विकास खण्डों में 1970-71 में पोषाहार कार्यक्रम शुरू किया गया था, जिसे बाद में 6 वर्ष तक की आयु के बच्चों और गर्भवती तथा दूध पिलाने वाली माताओं को पोषण प्रदान करने की दृष्टि से विस्तृत बनाया गया। इस कार्यक्रम के अधीन वर्ष में 300 दिन पोषक आहार बांटे जाते हैं। 1971-72 के दौरान जनजातियों के क्षेत्रों में पोषक आहार बांटने के 12,800 केन्द्र बनाए गए थे, जिनके अन्तर्गत 10 लाख 82 हजार शिशुओं, बच्चों और माताओं को सुपोषण प्रदान किया गया। 1972-73 में यह कार्यक्रम और आगे बढ़ा और कुल केन्द्रों की संख्या 17 हजार के करीब (16,900) पहुंच गई तथा 15,85,000 कुपोषण ग्रस्त शिशुओं, बच्चों और माताओं को पोषक आहार दिया गया।

लेखक ने हाल में ही समाज-कल्याण विभाग में इस कार्यक्रम से सम्बन्धित एक अधिकारी से भेंट की, जिन्होंने बताया कि अब यह प्रयत्न किया जा रहा है कि जनजातियों के इलाकों में जो चीजें उपलब्ध हैं, उनसे ही अधिक पोषण प्रदान करने वाले आहार तैयार किए जाएं। इसके लिए जनजाति के लोगों को पशुपालन, मुर्गीपालन तथा अधिक पोषण प्रदान करने वाले अनाज और दलहन उगाने के लिए प्रोत्साहित किया जा रहा है। यह प्रयास भी किया जा रहा है कि इस कार्यक्रम को पिछड़ी हुई जनजातियों और आदिमजातियों के लिए चलाए जा रहे आर्थिक विकास के कार्यक्रमों से जोड़ा जाए।

भारत सरकार इस कार्यक्रम को चलाने के लिए एक ओर जहां राज्य सरकारों का सहयोग ले रही है वहीं अनेक जनसेवी संस्थाओं का भी सहयोग उसको प्राप्त है। जैसे कि हरिजन सेवक

संघ, भारतीय आदिमजाति सेवक संघ, भारतीय बाल कल्याण परिषद् और केन्द्रीय समाज कल्याण बोर्ड।

मध्य प्रदेश में सबसे अधिक पिछड़ी जातियां और जनजातियों के लोग निवास करते हैं और वहां 80 प्रतिशत बच्चे इस कार्यक्रम के अधीन पोषक आहार पा रहे हैं। 15 अगस्त 1974 तक मध्य प्रदेश के जनजाति क्षेत्रों में 3,60 000 बच्चों और माताओं को पोषाहार के कार्यक्रम से लाभान्वित किया जा चुका है। इस अवधि तक यहां 2,772 केन्द्र पोषक आहार बांटने के लिए खोले जा चुके हैं। लाभ प्राप्त करने वालों में 2,33,000 के लगभग बच्चे और लगभग 82,000 माताएं थीं। सभी राज्यों में जनजातियों में पोषक-आहार कार्यक्रम की प्रगति के 15 अगस्त 1974 तक के आंकड़े इस प्रकार हैं :—

15 अगस्त, 1974 तक जनजाति-क्षेत्रों में पोषाहार कार्यक्रम की प्रगति

केन्द्र शासित प्रदेश	आदिवासी क्षेत्र लाभ उठाने वाले	केन्द्र	लाभ उठाने वालों की श्रेणियां बच्चे	माताएं
आन्ध्र प्रदेश	2,06,300	3,102	1,80,224	26,106
असम	1,20,000	650	1,08,000	12,000
बिहार	1,75,000	1,750	—	—
गुजरात	1,50,000	1,495	1,28,177	8,973
हरियाणा	—	—	—	—
हिमाचल प्रदेश	11,033	161	9,439	1,594
जम्मू-कश्मीर	—	—	—	—
कर्नाटक	2,380	39	2,231	149
केरल	20,764	106	20,763	1
मध्य प्रदेश	3,14,838	2,772	2,32,707	82,131
महाराष्ट्र	2,25,000	1,506	2,06,421	18,249
मणिपुर	10,198	83	10,028	170
मेघालय	30,741	223	23,101	7,640
नागालैण्ड	22,380	157	18,016	4,364
उड़ीसा	3,30,100	3,229	2,53,505	76,595
राजस्थान	1,03,609	1,180	—	—
तमिलनाडु	6,114	94	6,114	—
त्रिपुरा	22,700	227	22,700	—
उत्तर प्रदेश	5,000	94	—	—
पश्चिम बंगाल	1,67,446	849	1,66,322	1,124
अण्डेमान-निकोबार	2,527	24	2,307	220
दादरा और नगरहवेली	6,000	35	—	—
गोवा, दमन और दीव	1,000	—	—	—
लक्षद्वीप	2,571	6	1,977	594
मिजोरम	10,000	90	—	—
अरुणाचल प्रदेश	10,000	—	कार्यक्रम प्रारम्भ किया गया है	

पर्वतीय क्षेत्रों में खादी ग्रामोद्योग

□ शिशुपाल सिंह त्यागी

सन् 1962 तक, जब चीन ने हमारे उत्तरी सीमान्त पर बर्बर आक्रमण किया, हमारा ध्यान उस क्षेत्र की ओर न गया। हम उस तरफ से इसलिए आश्वस्त थे कि हिमालय की गगनचुम्बी श्रेणियां हमारी रक्षा करने में स्वयं समर्थ हैं। किन्तु इस आक्रमण से इस विश्वास को गहरा धक्का लगा और हम सोते से जागे। तभी हमें यह अहसास भी हुआ कि पर्वतीय व सीमान्त क्षेत्र वास्तव में देश की द्वितीय रक्षा पंक्ति हैं और हमें यह ध्यान भी आया कि ये क्षेत्र देश के अन्य क्षेत्रों की अपेक्षा बहुत पिछड़े हुए भी हैं। किन्तु यह आवश्यक था कि यह रक्षा पंक्ति सामाजिक, राजनीतिक तथा आर्थिक दृष्टि से सुदृढ़ रहती। किन्तु यह नहीं हो पाया और देश के पर्वतीय, सीमान्त तथा आदिवासी क्षेत्र के निवासी गरीबी व कष्टों का जीवन बिताते रहे हैं। उनकी गरीबी व बेबसी का लाभ असामाजिक व देशद्रोही तथा विदेशी तत्व भरपूर उठाते रहे हैं।

पर्वतीय क्षेत्रों की आर्थिक हालत बहुत शोचनीय है। वहां प्रकृति भी विकास की राह में एक रोड़ा रही है। ऊंचे-ऊंचे पहाड़ जहां कृषि के लिए कठिन हैं, वहां साथ ही आवागमन के साधनों के लिए भी कठिन हैं। एक तरह से ये क्षेत्र देश के अन्य भागों से कटे से रहे और इस प्रकार देश में विकास की जो सुविधाएं स्वतन्त्रता के बाद सम्भव हो सकीं उनका लाभ भी इन क्षेत्रों को न मिल सका। यही हाल जन-जाति क्षेत्रों का भी रहा और वे भी अपने रीति-रिवाजों व अलग-थलग रहने की प्रवृत्ति से अविकसित ही बने रहे और यह स्थिति आज तक कायम है। चूंकि देश में साधनों का सर्वथा अभाव है, इसलिए इन क्षेत्रों के विकास पर तुरन्त अपार धन लगाना सम्भव नहीं है।

चीनी आक्रमण के बाद देश का ध्यान इन क्षेत्रों की ओर गया और केन्द्रीय व राज्य सरकारों ने इन क्षेत्रों के विकास के लिए अपनी-अपनी योजनाएं बनाईं। इसी सन्दर्भ में खादी ग्रामोद्योग आयोग ने इन क्षेत्रों में खादी ग्रामोद्योगों का कार्य आरम्भ करने की योजना बनाई और उसके लिए निम्न उद्देश्य सामने रखकर कार्य आरम्भ किया :

1. कारीगरों और कर्मियों को उचित मूल्य और उपयुक्त समय पर कच्चे ऊनी माल की आपूर्ति करना।
2. कारीगरों को निःशुल्क सेवा एवं प्रशिक्षण सम्बन्धी सुविधाएं देना।
3. कारीगरों में सुधरे औजारों का वितरण करना जिससे कि उनकी आय में वृद्धि हो।
4. उपभोक्ता भण्डारों को चलाना जिससे लोगों को उचित मूल्य पर जीवनोपयोगी वस्तुएं उपलब्ध हो सकें।
5. अधिक से अधिक स्थानीय लोगों को काम देकर बेरोजगारी की समस्या हल करने में सहायता करना और प्रशिक्षण द्वारा लोक संस्थाओं का निर्माण करके स्थानीय नेतृत्व विकसित करना।

खादी ग्रामोद्योग आयोग ने यह निर्णय किया है कि अगले सात वर्षों में सभी पर्वतीय, सीमान्त व जनजाति क्षेत्रों में खादी ग्रामोद्योग कार्यक्रमों का जाल फैलाकर उनके सामाजिक व आर्थिक ढांचे को स्थानीय लोगों के माध्यम से स्थायित्व प्रदान किया जाए। आयोग का प्रस्ताव है कि इन क्षेत्रों में खादी गामोद्योगों का कार्य सघन रूप से किया जाए, लोगों को प्रशिक्षण की सुविधाएं दी जाएं, नए सुधरे औजारों की व्यवस्था की जाए तथा उपभोक्ता सामग्री भण्डारों की व्यवस्था की जाए।

उत्तर प्रदेश के सीमावर्ती क्षेत्रों में खादी आयोग की ओर से सर्वप्रथम सन् 1962-63 में कार्य शुरू किया गया। 1963-64 में इस कार्य का विस्तार हिमाचल प्रदेश, त्रिपुरा और राजस्थान

में हुआ। पिथौरागढ़ में 1964-65 में, पश्चिम बंगाल में 1966-67, अण्डमान् निकोबार में 1968-69 में, मणिपुर, नागालैण्ड और मध्य प्रदेश के बस्तर जिलों में 1969-70 में तथा गुजरात में 1971-72 में कार्य शुरू किया गया।

इन क्षेत्रों में कार्य को व्यवस्थित रूप से करने के लिए आयोग ने 12 क्षेत्रीय कार्यालयों, 103 केन्द्रों तथा 16 उपकेन्द्रों की स्थापना की है।

उत्तरकाशी, पिथौरागढ़, हिमाचल प्रदेश और राजस्थान के सीमावर्ती क्षेत्रों में मुख्यतः ऊनी खादी का उत्पादन किया जा रहा है। त्रिपुरा व मणिपुर के क्षेत्रों में सूती खादी का काम हो रहा है और बस्तर (मध्य प्रदेश) में कोसा रेशम का उत्पादन हाथ में लिया गया है। उपरोक्त सभी क्षेत्रों में ऊनी, सूती व रेशमी खादी के अलावा, अन्य ग्रामोद्योगों का काम भी चलाया जा रहा है। 1962-63 में केवल कुछ हजार रुपए के उत्पादन से शुरू किया गया कार्य बढ़कर 1972-73 में निम्न प्रकार हो गया।

1. उत्पादन/क्रय	33.88 लाख रुपए
2. बिक्री	49.73 लाख रुपए
3. पारिश्रमिक	11.04 लाख रुपए
4. रोजगार	15,869 कारीगर

खादी ग्रामोद्योग आयोग द्वारा नियुक्त अध्ययन मण्डली ने उत्तर पूर्वी सीमान्त व पर्वतीय क्षेत्रों का विस्तृत अध्ययन करके उनके विकास के लिए अपनी योजना आयोग के सामने पेश कर दी है। इसमें अध्ययन मण्डली ने सुझाव दिया है कि निम्न उद्योगों का विकास अविलम्ब हाथ में लेना चाहिए : रेशम खादी, ऊनी खादी, सूती खादी, अनाज व दाल अभिसंस्करण उद्योग, तेल घानी, चर्म, दियासलाई, गुड़ तथा खण्डसारी, साबुन, मधुमक्खी पालन, कुम्भकारी, ताड़ गुड़, बढ़ईगीरी व लोहारगीरी, हाथ कागज, रेशा, बांस, चूना उद्योग, फल परिरक्षण, अल्युमिनियम के बर्तन, गोबर गैस, तथा अन्य वनाधारित उद्योग जैसे दालचीनी, अगर तेल तथा कत्था आदि। इनके अतिरिक्त, अध्ययन मण्डली ने इस कार्य के लिए संगठन, विभागीय कार्यालय की स्थापना, प्रशिक्षण, बाजार व्यवस्था तथा इस कार्यालय के लिए दी जाने वाली तकनीकी तथा वित्तीय सहायता के बारे में भी अपने सुझाव दिए हैं। इस सब कार्य के लिए वित्त की आवश्यकता रहेगी जो भारत सरकार देगी।

खादी ग्रामोद्योग आयोग के सदस्य श्री जगपत दुबे इस मण्डली के अध्यक्ष थे। उनका कथन है कि हमारे देश के पर्वतीय, सीमान्त तथा आदिवासी क्षेत्रों की आर्थिक स्थिति बहुत गिरी हुई है उनके विचार में अभी भी समय है, जब सरकार इन क्षेत्रों के बारे में कुछ कर सकती है। उनका विचार है कि इस विषय में हमें लापरवाही नहीं बरतनी चाहिए अन्यथा उसके दूरगामी प्रभाव पड़ सकते हैं। अतः समय रहते हमें पूर्ण मन व प्रयत्नों के साथ इन क्षेत्रों के विकास के लिए आवश्यक कदम उठाने चाहिए।

विद्युत पूर्ति में आत्मनिर्भर घरों, खेतों, कारखानों को उदार दरों पर विद्युत् पूर्ति

चतुर्थ योजना में स्थापित विद्युत् क्षमता 757.5 मेगावाट अथात् 1951-52 की क्षमता से दस गुनी वृद्धि

राज्य की तीव्रगामी औद्योगिक प्रगति हेतु पांचवीं योजना में विद्युत् उत्पादन में 860 मेगावाट की अतिरिक्त वृद्धि प्रस्तावित

राज्य के संतुलित विकास हेतु पिछड़े जिलों में विद्युत् विकास के विशेष प्रयास खेती की पैदावार बढ़ाने में सहायक

मध्यप्रदेश विद्युत् मंडल का महत्वपूर्ण योगदान

पम्प के विद्युतीकरण के लिए लाइन बिछाई गई	1,57,627	विद्युतीकृत ग्राम	18,972
विद्युतीकृत हरिजन बस्तियां	2,069	विद्युत् उपभोक्ता (31 मार्च 1974)	8,05,086

पांचवीं योजना में प्रस्तावित

पम्पों का विद्युतीकरण	2 लाख	ग्रामों का विद्युतीकरण	11 हजार

1974-75 वर्ष के लक्ष्य :

पम्पों का विद्युतीकरण	23500	ग्रामों का विद्युतीकरण	1175

राज्य की सेवा में दिन-रात तत्पर

मध्यप्रदेश विद्युत् मण्डल

अगुच्छित आदिवासी गांव और सामुदायिक विकास

डा० शम्भू लाल दोषी

देश के विभिन्न भागों—पहाड़ों और मैदानों में रहने वाली आदिवासी जनसंख्या राष्ट्रीय विकास की समस्या को विशिष्ट रूप में प्रस्तुत करती है। इन लगभग 4 करोड़ (37,974,953) अर्थात् सम्पूर्ण जनसंख्या के 7 प्रतिशत लोगों की जनसंख्या की समस्याओं को भारतीय संविधान की धारा 46 ने स्वीकार किया है। इस धारा में कहा गया है कि "राज्य अनुसूचित जन-जातियों के शैक्षणिक और आर्थिक हितों की रक्षा विशिष्ट रूप से करेगा और इन्हें अन्याय तथा शोषण के सभी प्रकारों से बचाएगा।" राज्य ने जनजातियों के हितों की सुरक्षा के लिए तथा इन समूहों को विकास की ओर बढ़ाने के लिए कई योजनाओं और कार्यक्रमों को अपनाया है। इन कार्यक्रमों में सामुदायिक विकास योजना बहुत महत्वपूर्ण है। पंचायती राज की स्थापना के बाद ये विकास कार्यक्रम पंचायत समितियों द्वारा चलाए जाते हैं। विकास की दृष्टि से पंचायत समिति एक प्रक्रिया है और साथ ही एक साधन भी है जिसके द्वारा विभिन्न कृषि, शैक्षणिक, कल्याणकारी तथा भवन निर्माण कार्य किए जाते हैं। इन कार्यक्रमों का उद्देश्य आदिवासियों में विकास के लिए पहल करने की क्षमता पैदा करना तथा आत्मनिर्भरता पैदा करना है। पंचायत समिति से यह अपेक्षा की जाती है कि वह आदिवासियों को तकनीकी मार्गदर्शन दे और उन्हें देश की आर्थिक तथा राजनैतिक मुख्यधारा में एकीकृत करे। एकीकरण का यह उद्देश्य राष्ट्रीय समाज निर्माण का महत्वपूर्ण उद्देश्य है।

विकास कार्यों को लेकर आदिवासियों के सम्बन्ध में यह बात पूरे आग्रह के साथ कही जा सकती है कि आदिवासी समाज एक पृथक् सामाजिक-सांस्कृतिक समाज है। इस दृष्टि से यह समाज गैर-आदिवासी समाज से भिन्न है। वे आदिवासी जो हिन्दुओं के बहुत निकट हैं, उन्होंने हिन्दू समाज व्यवस्था को अपनाते हुए भी परम्परागत आदिवासी समाज के बुनियादी लक्षणों को बनाए रखा है। हम जिस राष्ट्रीय समाज की कल्पना करते हैं, उसमें हमारा उद्देश्य आदिवासियों को हिन्दू बनाना नहीं है, ईसाई बनाना नहीं है। विकास के किसी स्तर पर चलकर यदि आदिवासियों को ज्ञात हुआ कि उन्हें हिन्दू, ईसाई या अन्य कुछ बनाया जा रहा है, तो वे कहेंगे कि उनके साथ बहुत बड़ी धोखाधड़ी हुई है। भारत का संविधान एकाधिक संस्कृतियों के अस्तित्व को स्वीकार करता है। विभिन्न संस्कृतियां अपने अस्तित्व को बनाए रखकर भी एक राष्ट्रीय समाज का निर्माण कर सकती हैं। यह निर्माण एकीकरण की प्रक्रिया द्वारा पूरा किया जा सकता है। अतः देश के इन 7 प्रतिशत लोगों की समस्या वास्तव में इन्हें भारतीय समाज की मुख्य धारा का सक्रिय अंग बनाने की है।

आदिवासी क्षेत्रों में जो सामुदायिक विकास कार्यक्रम चलाए जाते हैं, उनका लक्ष्य आदिवासियों के शोषण को रोकना और उनका आर्थिक विकास करना ही नहीं है, इससे भी आगे ये कार्यक्रम एक राजनैतिक प्रक्रिया और आर्थिक योजना को रखते है जिनके द्वारा हम यह आशा रखते हैं कि आदिवासी अपनी सामाजिक—सांकृतिक विरासत को बनाए रखेंगे, प्रकृति की गोद में नाचें-कूदेगें, प्रसमस्त जीवन बिताएंगे। लेकिन साथ ही उन्हें देश की राजनैतिक और आर्थिक धारा में भी आना पडेगा। उनका राजनैतिक और आर्थिक भाग्य देश के अन्य तबकों के साथ बन्धा हुआ है। जब आदिवासी समाज राजनैतिक और आर्थिक दृष्टि से भारतीय समाज का अंग बन जाएगा तो आगे चलकर अन्य क्षेत्रों में भी उसका एकीकरण होना सम्भव है। इसी सन्दर्भ में पंचायती राज और उसके माध्यम से चलाए जाने वाले विकास कार्यक्रम एकीकरण की एक सशक्त प्रक्रिया हैं जो इन पिछड़े समूहों को देश के राष्ट्रीय जीवन का भागीदार बनाती हैं।

पंचायती राज और विकास कार्यक्रमों के उद्देश्य उपरोक्त अर्थ में बहुत महत्वपूर्ण हैं। प्रारम्भ में इन कार्यक्रमों का उद्देश्य प्रत्येक गांव को सामुदायिक विकास की एक सक्षम इकाई बनाना था। ये कार्यक्रम प्रत्येक गांव को स्वावलम्बी और आत्मनिर्भर बनाना चाहते हैं। तर्क की दृष्टि से भी गांव अपने आप में एक सक्षम इकाई हैं। गांव को इकाई की दृष्टि से देखें तो सामुदायिक विकास कार्यक्रम दो स्वरूपों में देखे जा सकते हैं। एक वे विकास कार्यक्रम हैं जो गांव की सामुदायिक आवश्यकताओं की पूर्ति करते हैं। इन कार्यक्रमों में स्कूल, प्रौढ़शाला, सार्वजनिक कुंआ, स्वास्थ्य सेवाएं, बिजली और नल का पानी सम्मिलित हैं। दूसरे विकास कार्यक्रम वे है जो सामुदायिक आवश्यकताओं पर केन्द्रित न होकर व्यक्ति की आवश्यकताओं पर केन्द्रित होते हैं। इन कार्यक्रमों में आदिवासी किसान को ऋण की सुविधा देना, उन्नत बीज, खाद आदि को उपलब्ध कराना, सिचाई, मेड़बन्दी आदि में अनुदान देना सम्मिलित है। विकास कार्यक्रम के ये दोनों स्वरूप निश्चित रूप से आदिवासी समाज की समस्याओं से सम्बन्धित हैं। लेकिन देश के सभी आदिवासियों की समस्याएं एक जैसी नहीं हैं। समस्याओं की प्रकृति स्थानीयता के आधार पर बदल जाती है। हमारी परिकल्पना है कि गांव की बनावट, चाहे वह गुच्छित (Clustered) हो या अगुच्छित, बहुत बड़ी सीमा तक समुदाय की समस्या और उसके हल को निश्चित करती है। अतः विकास कार्यक्रमों का निर्माण एक खुली चादर की तरह नहीं है जिसे देश भर के आदिवासियों को ओढ़ा दिया जाए। गुच्छित आदिवासी गांवों की समस्या निश्चित रूप से अगुच्छित आदिवासियों की तुलना में भिन्न होती है। यहां यह कहा जा सकता है कि गुच्छित आदिवासी गांव वे हैं जिनमें आदिवासी गैर आदिवासियों के साथ मकान से मकान मिला कर रहते हैं। ये गांव वस्तुतः संहत होते है। इन गांवों में आदिवासी अल्पसंख्यक होते हैं और बहुसंख्या ब्राह्मणों, बनियों तथा अन्य जातियों की होती है। ऐसे गुच्छित गांवों की समस्या बिजली, नल के पानी, स्कूल, दवाखाना आदि प्राप्त करने की है। अगुच्छित आदिवासी गांव वे हैं जिनमें आदिवासी के मकान के चारों ओर उसके खेत होते हैं, और इसके बाद दूसरे आदिवासी का मकान और उसके खेत। पहाड़ी क्षेत्रों में रहने वाले आदिवासियों के गांव अगुच्छित होते हैं। एक मकान एक टेकरी पर और दूसरा दूसरी पर और मकानों का यह सिलसिला एक गांव को ही कई वर्गमील में घेर लेता है। इन अगुच्छित आदिवासी गांवों की समस्या भिन्न प्रकार की है। इन गांवों में बिजली लाना कठिन है। हर टेकरी पर बिजली के तार नहीं खींचे जा सकते। हर पहाड़ी पर पानी के नल का जाल नहीं बिछाया जा सकता। अगुच्छित गांव का एक आदिवासी सार्वजनिक कुएं तक नहीं पहुंच सकता। खाई और नाले से आम आदिवासी की दूरी स्कूल और दवाखाने से बढ़ जाती है। जहां गुच्छित गांव की समस्या सड़क की है वहां अगुच्छित गांव की समस्या दूर-दूर के मकानों को छोटे मार्गों के जाल से जोड़ देने की है। अतः देश भर के आदिवासियों के लिए कोई एक सर्वसम्मत विकास कार्यक्रम नहीं हो सकता। यदि हम किसी ऐसे कार्यक्रम को समान रूप से सभी आदिवासियों पर लागू करने का आग्रह करते हैं, तो भय है, इसमें हम आदिवासियों के एकीकरण की प्रक्रिया को कोई गति नहीं दे पाएंगे। शायद ऐसा करने में हम आदिवासियों के नाम पर गैर-आदिवासियों के विकास में विकास की धनराशि लगा देंगे और इसके परिणामस्वरूप आदिवासी और गैर-आदिवासी की राजनैतिक और आर्थिक दूरी बढ़ जाएगी।

देश के लगभग 4 करोड़ आदिवासी सभी राज्यों में समान रूप से नहीं पाए जाते। किसी राज्य में यह समूह बहुतायत से पाया जाता है और किसी में न्यूनता से। उदाहरण के लिए कुछ छोटे राज्यों में जैसे कि केरल और तमिलनाडु में इनकी संख्या बहुत थोड़ी है। दूसरी ओर ऐसे राज्य भी हैं जैसे कि मध्यप्रदेश, बिहार और उड़ीसा जिनमें इनकी बहुत अच्छी संख्या है। ऐसे राज्य भी हैं जिनमें इनकी संख्या बहुत बड़े बहुमत में है। इन राज्यों में मिजोराम, अरुणाचल और नागालैण्ड हैं। एक तरह से ये राज्य आदिवासी राज्य हैं।

भारतीय आदिवासियों के निवास को दो प्रकार के गांवों में बांटा जा सकता है- गुच्छित और अगुच्छित यदि हम अनुसूचित जातियों और जनजातियों के आयुक्त की पिछली रिपोर्टों तथा ढेबर और एल्विन कमेटियों के ज्ञापनों का अवलोकन करें तो ज्ञात होगा कि देश के आदिवासियों की बहुत बड़ी संख्या अगुच्छित गांवों में रहती है और इन अगुच्छित गांवों के विकास की समस्याओं पर हमने बहुत कम ध्यान

दिया है। द्वितीय पंचवर्षीय योजना के दौरान यह कहा गया कि अगुच्छित गांवों के आदिवासियों का संहत गांवों में पुनर्वासन किया जाए। परीक्षण के तौर पर कुछ विकास खण्डों ने आदिवासियों के लिए पुनर्वासन बस्तियां बनाईं। परिणाम निराशाजनक रहा। एल्विन रिपोर्ट ने 1960 में यह सुझाव दिया कि इन पुनर्वासन बस्तियों को बन्द कर दिया जाए क्योंकि ये आदिवासियों की परम्परा के प्रतिकूल हैं। सरकार का यह निर्णय बताता है कि हम अगुच्छित गांवों में रहने वाले आदिवासियों की बसावट में दखल देना नहीं चाहते। ऐसी अवस्था में विकास कार्यक्रमों के परिणाम को, जो हमें अगुच्छित आदिवासी क्षेत्र में मिलते है, ध्यानपूर्वक देखना चाहिए।

एक अध्ययन

ऊपर हमने अगुच्छित आदिवासी गांवों की विकास की समस्या को लेकर कुछ परिकल्पनाएं रखी हैं। पहली परिकल्पना यह है कि अगुच्छित आदिवासी गांवों की समस्याएं गुच्छित गांवों से भिन्न हैं। ऐसी अवस्था में अगुच्छित आदिवासी गांव सामुदायिक विकास कार्यक्रमों का लाभ नहीं ले पाते। हमारी दूसरी परिकल्पना यह है कि आदिवासियों के विकास कार्यक्रम गुच्छित गांवों में होते हैं और ऐसी अवस्था में सामुदायिक विकास कार्यक्रम का लाभ गैर आदिवासियों को अधिक मिलता है।

अपनी परिकल्पनाओं की जांच हमने राजस्थान की बांसवाड़ा जिले की घांटोल पंचायत समिति में आनुभविक अध्ययन द्वारा की है। बांसवाड़ा दक्षिणी राजस्थान का एक जिला है। इसकी 8 पंचायत समितियों में घांटोल एक ऐसी समिति है जहां बहुसंख्यक जनसंख्या भीलों की है। इस पंचायत समिति में कुल 208 गांव हैं (1971) जिनमें 71,171 लोग रहते हैं। समिति का क्षेत्र 837 वर्ग किलोमीटर में फैला हुआ है। हमने अपने अध्ययन के लिए इन गांवों को अगुच्छित, आंशिक गुच्छित और गुच्छित कोटियों में रखा है। इसे हम निम्न तालिका-1 में देते हैं :—

तालिका 1

घांटोल पंचायत समिति की जनसंख्या और गांव के प्रकार

गांव के प्रकार	संख्या	जनसंख्या	सम्पूर्ण समिति का प्रतिशत
अगुच्छित	169	45,194	64.0
आंशिक गुच्छित	9	3,819	5.0
गुच्छित	30	22,158	31.0
योग	208	71,171	100.0

169 अगुच्छित गांवों में पंचायत समिति की कुल आदिवासी जनसंख्या का 80 प्रतिशत भाग रहता है। लोक भाषा में इन आदिवासी भीलों को पालवी भील अर्थात् पहाड़ों में रहने वाले भील कहते हैं। आंशिक गुच्छित गांव में हिन्दू जनसंख्या तो गांव की गुच्छित बसावट में रहती है लेकिन आदिवासी गांव से थोड़ी दूर अगुच्छित बसावट में रहते हैं। ऐसी आदिवासी जनसंख्या केवल 5 प्रतिशत है। समिति की 31 प्रतिशत आदिवासी जनसंख्या हिन्दुओं की बसावट में गुच्छित रूप से रहती है।

सामुदायिक विकास कार्यक्रमों में शिक्षा, सामाजिक शिक्षा और जन स्वास्थ्य के विस्तार को हमने इन गांवों के अध्ययन में देखा है। अध्ययन से सम्बन्धित तत्व सामग्री बताती है कि उच्चतर माध्यमिक शाला तथा माध्यमिक शाला केवल गुच्छित गांवों में हैं। विस्तृत आंकड़े हम निम्न तालिका-2 में प्रस्तुत करते हैं।

सामाजिक शिक्षा के अन्तर्गत पुस्तकालय, सूचना केन्द्र, कृषिशिविर, युवादल, आदि सम्मिलित हैं। इन कार्यक्रमों का लेखा जोखा भी इसी बात की पुष्टि करता है कि इनका लाभ गुच्छित गांवों को ही मिला है। जनस्वास्थ्य के अन्तर्गत सार्वजनिक कुआं, प्राथमिक स्वास्थ्य केन्द्र, सार्वजनिक आदि हैं। गांव के प्रकार की दृष्टि से स्वास्थ्य सेवाओं का ब्यौरा तालिका-3 में दिया गया है :

जन स्वास्थ्य सुविधाएं किसी भी समुदाय के लिए बहुत महत्वपूर्ण हैं। आदिवासियों के लिए तो इनका महत्व और भी बढ़ जाता है। 99 सेवा केन्द्रों में से अगुच्छित आदिवासी गांवों को केवल 47.47 प्रतिशत केन्द्र ही प्राप्त हैं। तालिका का विश्लेषण बताता है कि गैर-आदिवासी जनसंख्या जो 31 प्रतिशत है, लगभग आधी स्वास्थ्य सेवाओं का लाभ लेती है। सार्वजनिक कुआं, सार्वजनिक मूत्रालय, आयुर्वेदिक दवाखाना आदि पर भी ऐसा ही निष्कर्ष लागू होता है।

यदि सामुदायिक विकास योजनाओं

तालिका 2

गांवों के प्रकार के अनुसार शिक्षण सुविधाएं

गांवों के प्रकार	संख्या	प्राथमिक		माध्यमिक		उच्चमाध्यमिक	
		संख्या	प्रतिशत	संख्या	प्रतिशत	संख्या	प्रतिशत
अगुच्छित	169	59	67.05	—	—	—	—
आंशिक गुच्छित	9	7	7.95	—	—	—	—
गुच्छित	30	22	25.00	6	100.00	1	100.00
योग	208	88	100.00	6	100.00	1	100.00

तालिका 3

गांव के प्रकार के अनुसार स्वास्थ्य सेवाओं का विस्तार

स्वास्थ्य सेवाओं के प्रकार	अगुच्छित		आंशिक गुच्छित		गुच्छित		योग
	सं०	प्रतिशत	सं०	प्रतिशत	सं०	प्रतिशत	
सार्वजनिक कुआं	45	52.0	4	4.7	37	43.3	86
प्राथमिक स्वास्थ्य केन्द्र					1	100.00	1
स्वास्थ्य उपकेन्द्र					3	100.00	3
आयुर्वेदिक औषधालय	2	25.0			6	75.0	8
सार्वजनिक मूत्रालय व शौचालय					1	100.00	1
योग	47		4		48		99

का उद्देश्य आदिवासियों को देश की राजनैतिक तथा आर्थिक मुख्य धारा में खींचना है तो हमें आदिवासियों की सम्पूर्ण समस्याओं पर थोड़ा और विचार करना होगा। यह निश्चित है कि राज्य आदिवासियों के विकास पर बहुत धन व्यय कर रहा है। सभी प्रकार की तकनीकी सुविधाएं प्रदान की जा रही हैं। ऋण देने की व्यवस्था भी है। सरकारी और गैर सरकारी नेतृत्व भी उपलब्ध हैं। आवश्कता केवल इस बात की है कि हम आदिवासियों की समस्याओं को स्थानीय तौर पर समझें और उनके अनुरूप कार्यक्रमों को लागू करें। राजनैतिक दृष्टि से आदिवासियों में पंचायती राज राजनीतिकरण करने में बहुत सफल हुआ है। आदिवासियों को ग्राम पंचायत से लेकर पंचायत समिति, जिला परिषद् तथा विधान सभा और संसद् तक पर्याप्त प्रतिनिधित्व प्राप्त है। हमें पहल केवल आर्थिक क्षेत्र में करनी है।

हिन्दी की अनुपम पत्रिकाएँ

आजकल

भारतीय कला, साहित्य और संस्कृति की मासिक पत्रिका

"आजकल" साहित्य, कला, नाटक फिल्म तथा अन्य ज्वलन्त विषयों की विभिन्न प्रवृत्तियों की एक स्पष्ट झांकी प्रस्तुत करता है।

भारतीय भाषाओं के साहित्य की गतिविधियों और देश में हो रहे सामाजिक, राजनीतिक और आर्थिक परिवर्तनों से आपको अवगत कराता है।

समसामयिक समस्याओं को गम्भीरता से सोचने और समझने के लिए प्रेरित करता है।

एक प्रति : ७५ पैसे
वार्षिक : ८ रुपए
द्विवार्षिक : १४ रुपए
त्रिवार्षिक : २० रुपए

विशेष छूट

विद्यार्थियों, अध्यापकों (विद्यालय से प्रमाण-पत्र देने पर) एवं पुस्तकालयों को पत्रिकाओं के चन्दे पर 25 प्रतिशत की विशेष छूट।

हमारी पत्रिकाओं के ग्राहकों को हमारी पांच रुपए या अधिक मूल्य की पुस्तकें क्रय करने पर 20 प्रतिशत की छूट।

आज ही लिखें
व्यापार व्यवस्थापक
प्रकाशन विभाग, सूचना एवं प्रसारण मन्त्रालय
पटियाला हाउस, नई दिल्ली-110001

पर्वतीय और पठारीय क्षेत्र

	राज्य	पर्वतीय जिला क्षेत्र (वर्ग किलोमीटर में)	पर्वतीय जिला क्षेत्र जनसंख्या	पठारीय क्षेत्र (वर्ग किलोमीटर में)	पठारीय क्षेत्र जनसंख्या
1.	आन्ध्र प्रदेश	—	—	183,763	23,778,109
2.	असम	15,222	455,357	—	—
3.	बिहार	—	—	79,638	14,227,133
4.	गुजरात	10,549	1,942,989	—	—
5.	हिमाचल प्रदेश	55,673	3,460,434	—	—
6.	जम्मू कश्मीर	138,124	4,616,632	—	—
7.	केरल	8,038	3,541,704	—	—
8.	मध्य प्रदेश	—	—	80,167	5,024,340
9.	महाराष्ट्र	13,040	1,990,583	112,800	14,696,095
10.	मणिपुर	22,356	1,072,753	—	—
11.	मेघालय	22,489	1,011,699	—	—
12.	मैसूर	22,821	3,166,711	(इसके अलावा चार जिले और भी हैं जिनका क्षेत्रफल 38,319 वर्ग किलोमीटर और जनसंख्या 8,482,712 है)	
13.	नागालैण्ड	16,527	516,449	—	—
14.	उड़ीसा	128,078	13,945,574	—	—
15.	राजस्थान	39,688	4,560,068	—	—
16.	तमिलनाडु	2,549	494,015	15,673	4,373,178
17.	उत्तर प्रदेश	51,149	3,821,960	40,756	5,895,066
18.	पश्चिम बंगाल	3,075	781,777	—	—
19.	अण्डमान निकोबार द्वीपसमूह	8,293	115,133	—	—
20.	अरुणाचल प्रदेश	83,578	467,511	—	—
21.	मिज़ोरम	21,087	332,390	—	—

*आंकड़े गृह मन्त्रालय के संगणना महापंजीयक के कार्यालय से लिए गए हैं।

निदेशक, प्रकाशन विभाग, सूचना और प्रसारण मन्त्रालय, पटियाला हाउस, नई दिल्ली-1
द्वारा प्रकाशित तथा केसर क्यारी इलैक्ट्रिक प्रेस, लाइब्रेरी रोड, दिल्ली-6 द्वारा मुद्रित।

अनुसूचित जातियों और अनुसूचित जनजातियों की जनसंख्या—1971

भारत के महापंजीकार और संगणना आयुक्त ने 1971 की जनगणना के अनुसार जनसंख्या के आंकड़े उपलब्ध कराए हैं। भारत की कुल जनसंख्या 54,79,49,809 है। अनुसूचित जातियों की संख्या 7,99,95,896 (कुल जनसंख्या का 14.6 प्रतिशत) है और अनुसूचित जनजातियों की संख्या 3,80,15,162 (कुल जनसंख्या का 6.94%) है। इनकी राज्यवार जनसंख्या निम्न तालिका में दी गई है :—

1	2	3	4
1. आन्ध्र प्रदेश	43,502,708	5,774,548	1,657,657
2. असम	14,957,542	912,639	1,919,947
3. बिहार	56,353,369	7,950,652	4,932,767
4. गुजरात	26,679,475	1,825,432	3,734,422
5. हरियाणा	10,036,808	1,895,933	—
6. हिमाचल प्रदेश	3,460,434	769,572	141,610
7. जम्मू-कश्मीर	4,616,632	381,277	—
8. केरल	21,347,375	1,772,168	269,356
9. मध्य प्रदेश	41,654,119	5,453,690	8,387,403
10. महाराष्ट्र	50,412,235	3,025,761	2,954,249
11. मणिपुर	1,072,753	16,376	334,466
12. मेघालय	1,011,699	3,837	814,230
13. मैसूर	29,299,014	3,850,034	231,268
14. नागालैण्ड	516,449	—	456,602
15. उड़ीसा	21.944,615	3,310,854	5,071,937
16. पंजाब	13,551,060	3,348,217	—
17. राजस्थान	25,765,806	4,075,580	3,125,606
18. तमिलनाडु	41,199,168	7,315,595	311,515
19. त्रिपुरा	1,556,342	192,860	450,544
20. उत्तर प्रदेश	88,341,144	18,548,916	198,565
21. पश्चिम बंगाल	44,312,011	8,816,028	2,532,969
केन्द्रशासित प्रदेश			
1. अण्डमान निकोबार द्वीप समूह	115,133	—	18,102
2. अरुणाचल प्रदेश	467,511	339	369,408
3. चण्डीगढ़	257,251	29,073	—
4. दादरा और नगर हवेली	74,170	1,332	64,445
5. दिल्ली	4,065,698	635,698	—
6. गोवा, दमन व दियू	857,771	16,514	7,654
7. लक्षदीव, मिनिकाय और एमिण्डवी द्वीप समूह	31,810	—	29,540
8. पाण्डिचेरी	47,707	72,921	—

आंकड़े गृहमन्त्रालय के समाज कल्याण विभाग द्वारा उपलब्ध कराए गए हैं।